॥ श्री ॥

शास्त्रमर्मज्ञ, निर्भीकप्रवचनकार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी. गुणिजनानुरागी, श्रमणोत्तम. तपोनिधि, प्रशममूर्ति, अध्यात्मयोगी, सन्मार्ग-प्रणेता, सद्धर्मप्रचारक, गुर्वाम्नाय परिपोषक

प्रातः स्मरणीय परम दिगम्बर पूज्यवर मुनिराज १०८

श्री विजयसागरजी महाराज सा०

चातुर्मास योग : वि. सं. २०३६, कुली (सीकर–राजस्थान)

॥ श्रीः ॥

शास्त्रमर्मज्ञ, निर्भीकप्रवचनकार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, गुणिजनानुरागी, श्रमणोत्तम, तपोनिधि, प्रशममूर्त्ति, अध्यात्मयोगी, सन्मार्ग-प्रणेता, सद्धर्मप्रचारक, शुद्धाम्नाय परिपोषक

प्रातः स्मरणीय परम दिगम्बर पूज्यवर मुनिराज १०८

श्री विजयसागरजी महाराज सा०

चातुर्मास योग : वि. सं. २०३६, कुली (सीकर–राजस्थान)

परम पूज्य १०८ श्री मुनि विजयसागरजी महाराज का जीवन-परिचय

खाचरियावास (सीकर—राजस्थान) ग्राम में सेठ श्री उदयलालजी गंगवाल की धर्मपत्नी श्रीमती धापूबाई जी की मंगल कुक्षि से भादवा सुदी १० रविवार, संवत् १९७२ को आपका शुभ जन्म हुआ था।

आपका जन्म-नाम जमनालाल रखा गया था। आपने लौकिक शिक्षा ग्रहण की थी। १६ वर्ष की अवस्था में सेठ श्री छगनलाल जी पाटोदी, सेरा (नंद्रा) वालों की सुपुत्री केशरदेवी के साथ आपका मंगल विवाह हुआ था—जिनसे आपको ३ सुपुत्र और २ सुपुत्रियां प्राप्त हुई—जिनके शुभ नाम क्रमशः इस प्रकार हैं :—(१) मोहनलाल, (२) चिरंजीलाल, (३) पदमचन्द, (४) मंजरीदेवी, (५) पानादेवी।

आपका गृहस्थ जीवन सरल, शांत, उत्साहपूर्ण और धर्मपरायण था।

स्व० आचार्य श्री ज्ञान सागरजी महाराज का संवत् २०१९ को खाचरियावास में ससंघ पदार्पण हुआ। उनकी पन्द्रह दिन की सत्संगति और उपदेशामृत से आपके भाव वैराग्य और संयम की तरफ आकृष्ट होने लगे। फलतः संवत् २०२३ में आपने अजमेर में जाकर दर्शन प्रतिमादि के नियम ग्रहण कर लिए और संवत् २०२६ आषाढ़ शुक्ला १० को केशरगंज, अजमेर में श्री आ० ज्ञानसागरजी महाराज से सप्तम (ब्रह्मचर्य) प्रतिमा ग्रहण कर उनके संघ में रहने लगे। इस प्रकार १ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहे। फिर रेण-वाल—किशनगढ़ के चातुर्मास में आ० श्री ज्ञानसागरजी से ही आषाढ़ शुक्ला १० संवत् २०२७ में क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण करली। ढाई वर्ष क्षुल्लक विनय-सागरजी के रूप में, संघ में ज्ञानार्जन करते हुए व्यतीत किए। फिर माघ सुदी

५ (वसंत पंचमी) संवत् २०२६ के शुभ दिन १०८ श्री मुनिवर्य विवेक
जी महाराज से दिगम्बर—निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर अपने जीवन को
किया। आपका नाम मुनि श्री विजयसागरजी रखा गया। आपके चातु
इस प्रकार हुए :—

प्रथम — पांचवा ग्राम (नागौर) सं० २०३०
द्वितीय — दांता (रामगढ़–सीकर) सं० २०३१
तृतीय — सीकर (राजस्थान) सं० २०३२
चतुर्थ — कुलीग्राम (सीकर) सं० २०३३
पंचम — लावा (टोंक–राजस्थान) सं० २०३४
षष्ठम् — मालपुरा (टोंक–राजस्थान) सं० २०३५
सप्तम — कुलीग्राम (सीकर) सं० २०३६

आपकी ओजस्वी आध्यात्मिक सरल प्रवचन शैली से अनेक भव्य जी
ने लाभ उठाया है। आप विकथाओं से दूर निरन्तर धर्म-ध्यान, ज्ञानो
पठन-पाठन एवं आत्मानुभव में निरत रहते हैं।

ज्ञान की विपुल सामग्री से परिपूर्ण तीन रजिस्टर और चार
जो महाराज श्री ने संकलित की हैं उन्हीं में से लेकर यह ग्रन्थ निर्माण कि
गया है। संघ में लेखनादि का समस्त कार्य महाराज श्री की आज्ञानुसार में
करता हूँ।

विषयाशावशातीतो, निरारंभोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तः, मुनि विजयसागरः॥

आपका शिष्य
क्षु० ज्ञानानन्द सागर
श्री १०८ मुनि विजयसागरजी महाराज का संघ

॥ : श्री : ॥

भूमिका

★

'दीपिका' नामान्त की शैली 'न्याय दीपिका' (आचार्य धर्मभूषण कृत) वं 'भाव दीपिका' (पं० दीपचन्दजी शाह कृत) के अनुसार अपनाई गई है।

इस "आगम दीपिका" में जैन धर्म-सिद्धान्त की विविध जानकारी प्रश्नोत्तर रूप में सरल सुबोध रीति से प्रस्तुत की गई है। अतः इस ग्रन्थ का आगम-दीपिका' नाम सार्थक है। प्रश्नोत्तर की शैली भी पूर्वाचार्यानुसम्मत है। प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में बताया गया है कि—राजा श्रेणिक के प्रश्न पर महावीर स्वामी या गौतमगणधर ने अमुक कथा कही।

पं० भूधरदासजी का 'चर्चा समाधान' एवं पं० रायमल्लजी का 'चर्चा-सार संग्रह' आदि ग्रन्थ इसी प्रकार प्रश्नोत्तर की शैली में ही निर्मित हुए हैं।

इस ग्रन्थ में जो प्रश्नोत्तर दिये हैं वे बहुत पहिले सन्मति सन्देश (मासिक) जैन सन्देश (साप्ताहिक) आदि पत्रों में विद्वानों के द्वारा प्रकट किये गये थे उनमें से ही सर्व साधारण के लिए उपयोगी ज्ञानवर्द्धक प्रश्नों को चुनकर विषयानुसार मुनिश्री ने संकलित किये हैं। फिर भी वे इस ग्रन्थ के कर्त्ता उसी तरह हैं जिस तरह 'चारित्रसार' के कर्त्ता श्री चामुण्डराय हैं जबकि वह सारा ग्रन्थ राजवार्तिक आदि ग्रन्थों की अक्षरशः उधार है।

जिस तरह कूप सरोवर से अपने घड़े में लाया पानी अपना हो जाता है। अथवा जिस तरह पुष्पों को गूंथकर उनसे माला बनाने वाला मालाकार हो जाता है वही स्थिति यहां समझनी चाहिए।

इस ग्रन्थ में ७ अधिकार हैं जिनमें कुल मिलाकर २६२+५ प्रश्नोत्तर हैं। जिनका खुलासा विवरण मुनिश्री ने अपने "[illegible]" में किया है जो एक तरह से विषय-सूची का भी काम करते हैं।

ग्रन्थ के अन्त में पृष्ठ १४१ से १६० तक जो 'परिशिष्ट' ५ प्रश्नोत्तर दिये हैं वह सब प्रमेय बिल्कुल नया और मौलिक है। 'परि की शैली भी पुरातन है। जो बातें ग्रन्थों में कहने से रह जाती हैं उन्हें में परिशिष्ट रूप में ग्रन्थित कर देते हैं प्राचीन ग्रन्थों में इसका चू प्रकीर्णक नामों से उपयोग किया है देखो—११वें दृष्टिवादांग के ५ भेद अन्तिम चूलिका, अन्य अंगों में भी अन्त में चूलिका, कषाय पाहुड के अन भी चूलिका, 'प्रायश्चित-चूलिका' ग्रन्थ, रत्नकरण्ड श्रावकाचार के अन्त मे चूलिका रूप से ११ प्रतिमाओं का वर्णन, यशस्तिलक चम्पू के अन्त 'प्रकीर्णक'।

कूपान्निष्कास्य पातुं भवति हि सलिलं दुष्करं यस्य कस्य।
केनाप्यन्येन तूल्नोत्कुट निहितमहो अन्यथा वा तदेव॥
तद्वत्पूर्वप्रणीतात्कठिनविवरणाज्ज्ञातुमर्थोऽत्र शक्यः।
कैश्चिज्जातप्रबोधैस्तदितरसुगमो ग्रन्थ एष व्यधायि॥

अर्थ—जिस प्रकार साधारण मनुष्य को कुये से जल निकाल कर पी कठिन है जबकि—दूसरों के द्वारा लोटे में भर कर पेश किया जल पीना है। उसी प्रकार पूर्व रचनाकारों के कठिन-कठिन प्रकरणों से जो बुद्धिमान वे ही अर्थावधारण कर सकते हैं। अतः उनमें से सरल प्रकरण निकालकर य ग्रन्थ निबद्ध किया गया है ताकि इससे सामान्य बुद्धि वाले भी समुचित ला उठा सकें।

प्रश्नोत्तर ये सार, 'रतन' हिरदय धरें।
करके चिन्तन मनन, ज्ञान-वरधन करें॥

—रतनलाल कटारिया, केकड़ी (अजमेर)

॥ श्रीः ॥

ग्रन्थ-प्रकाशिका

श्रीमती मूलीदेवीजी धर्मपत्नी स्व० श्री पूरणमलजी जैन गंगवाल का

संक्षिप्त जीवन-परिचय

आपका जन्म ग्राम मंडा भीमसिंह जिला जयपुर में हुआ था। आपका शुभ विवाह १४ वर्ष की उम्र में हुआ था। दैव-योग से आपके पतिदेव का स्वर्गवास कुछ वर्षों बाद में ही हो गया। फिर भी आपने अपना जीवन धैर्य के साथ व्यतीत करते हुए अपने बच्चों का लालन-पालन बड़ी सुयोग्यता से किया। आपके तीन पुत्र और एक पुत्री है। जिन्हें पूर्ण शिक्षित कर, उनकी शादी करके आपने अलग-अलग सबको व्यवसाय में लगा दिया है। सब परिवार आपकी आज्ञा में चलता है। आपका समग्र जीवन धार्मिक-प्रवृत्ति में ही व्यतीत हो रहा है। परिवार वाले सब धर्म-प्रवृत्ति में आपको पूरा सहयोग देते हैं। समाज में भी आपकी अच्छी प्रतिष्ठा है।

कुली ग्राम में मुनि श्री विजयसागरजी महाराज सा. का चातुर्मास हुआ है इसमें भी आपका बहुत ही शोभनीय सहयोग रहा।

आपकी इच्छा हुई कि—धार्मिक जानकारी को बढ़ाने वाली सर्व साधारण के लिए उपयोगी सरल सुबोध एक नवीन पुस्तक का प्रकाशन हो तो श्रेयस्कर रहे। तदनुसार मुनि श्री ने यह "आगम दीपिका" संकलित कर

दो शब्द

इस पुस्तक में आद्योपान्त जो भी लिखा गया या संग्रह किया गया है वह सब आगमानुसार ही है। इस पुस्तक के लिखवाने का विचार जगह-जगह के जैन समाज के व्यक्तियों की प्रार्थना (कि नीचे लिखी बातें हरएक जैन समाज के व्यक्ति की जानकारी में आवे) पर किया गया है।

नीचे लिखी बातें निम्न प्रकार जानने को लिखी गई हैं—

प्रथम अधिकार में णमोकार मन्त्र के प्रश्नोत्तर २० हैं—जिसमें णमोकार मन्त्र कब से है, इसको महामन्त्र क्यों कहते हैं, सिद्धों से पहिले अरिहन्त भगवान् को नमस्कार क्यों करते हैं और पंचपरमेष्ठी का स्वरूप क्या है—इत्यादि की जानकारी है (पृष्ठ संख्या १ से १४)।

दूसरे अधिकार में तीर्थङ्करों के बारे में जानकारी के प्रश्नोत्तर १२० हैं—जिसमें ६३ शला के पुरुषों की जानकारी, तीर्थङ्करों के होने वाली बातों की और शरीर की ताकत की जानकारी, महावीर भगवान् ने बाल ब्रह्मचारी रह कर ही दिगम्बरी दीक्षा ली थी, भगवान् शब्द की परिभाषा क्या है, तीर्थङ्कर भगवान् का संक्षिप्त उपदेश क्या है, अरहंत भगवान् पूर्ण सुखी क्यों हैं, विदेह क्षेत्र कहाँ है व श्री सीमन्धरनाथ आदि बीस तीर्थङ्करों के चिन्ह, श्री कुन्दकुन्दाचार्य आठ दिन तक विदेह क्षेत्र में रहे थे—इत्यादि की जानकारी है (पृष्ठ संख्या १५ से ४७)।

तीसरे अधिकार में जैन-धर्म और तद्विषयक जानकारी के प्रश्नोत्तर ५५ हैं—जिसमें जैन धर्म कब से है, जैन धर्म का क्या अर्थ है, जैन धर्म श्रेष्ठ क्यों है और वह क्या कहता है।

धर्म किसे कहते हैं, अधर्म क्या है वह कैसे छूट सकता है, धर्म का स्वरूप

क्या है, धर्म का मर्म क्या है, धर्म कितने प्रकार का है, धर्म किसमें है, बड़ा या धर्मात्मा और धर्म से हमें क्या लाभ है इत्यादि की जानकारी है (पृष्ठ संख्या ४८ से ५६)।

चौथे अधिकार में दर्शन पूजा करने के प्रश्नोत्तर १०३ हैं—जि मन्दिर क्या है व प्रति दिन मन्दिर जाने से लाभ क्या, उपासना किसकी कर चाहिए, सच्चे-देव-शास्त्र-गुरु का लक्षण क्या है, दर्शन करने की विधि है, पूजा कैसे की जावे, निर्माल्य द्रव्य किसे कहते हैं और उसका उपभोग क कर सकता है, धर्मायतनों में हिंसा होने का कार्य न करें—इत्यादि की ज कारी है (पृष्ठ संख्या ६० से ११२)।

पांचवें अधिकार में भगवान् की भक्ति करने के प्रश्नोत्तर ११४ हैं जिसमें भक्ति-संसार का कारण है, आश्रव तत्त्व है, पुण्य पदार्थ है, पूजा औ व्रत शुभ आश्रव होने से पुण्य है, पुण्य मिथ्यादृष्टि का या सम्यग्दृष्टि का का ही कारण है, मुमुक्षु जीव पुण्य और पाप दोनों को श्रद्धा में आश्रव तत्त्व और संसार का कारण मानता है—इत्यादि की जानकारी है (पृष्ठ सं ११३ से १२४)।

छट्ठे अधिकार में सिद्ध लोक और सिद्ध भगवान् की जानकारी प्रश्नोत्तर ३७ हैं—जिसमें सिद्ध लोक कहां है, सिद्ध शिला क्या है, भगवा का निवास कहां है, मोक्ष में भगवान् क्या करते हैं, सिद्ध भगवान् को कैस और कितना सुख है, मोक्ष किसे कहते हैं, मोक्ष क्या है, मोक्ष का मार्ग क्या है मोक्ष का मार्ग एक ही है या अधिक, मोक्ष मार्ग कौनसे गुणस्थान से शुरू होत है, क्या हमें भगवान् मोक्ष में पहुंचा सकते हैं और कौनसे व्रत करने से मो मिलता है इत्यादि की जानकारी है (पृष्ठ संख्या १२५ से १३७)।

सातवें अधिकार में तीर्थ क्षेत्रों की जानकारी के प्रश्नोत्तर १३ हैं— जिसमें भारत में सबसे बड़ा तीर्थ क्षेत्र और ज्यादा तीर्थ क्षेत्र कौनसे प्रांत में है [illegible] सम्मेद शिखर जी की एक वन्दना करने से [illegible]

।—इत्यादि की जानकारी है (पृष्ठ संख्या १३८ से १४० तथा १४१ से
०)। इस तरह सातों अधिकारों के प्रश्नोत्तरों की कुल संख्या ३६२ है।
शिष्ट के ५ और मिलाने पर समग्र संख्या ३६७ है।

मैं इस पुस्तक का कर्त्ता भी नहीं हूँ क्योंकि यह सब जड़ की क्रिया
है। जब तक पूर्ण वीतरागता न हो तब तक छद्मस्थ के भूमिकानुसार राग
ता है। उस राग का ही पोषण हुआ है। परन्तु मैं इस राग का भी स्वामी
ीं हूँ, क्योंकि ये सब ज्ञेय पदार्थ हैं। अतः मैं तो इनका ज्ञायक हूँ।

मुनि विजयसागर

卐 श्री वीतरागाय नमः 卐

प्रथम अधिकार

❀ मंगलाचरण ❀

मोकार मंत्रः—णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ।।

आतमा सो अर्हन्त है, निश्चय सिद्ध जु सोहि ।
आचारज उवझाय अरु, निश्चय साधु सोहि ।।१०४।।

अर्थ— निश्चय से आतमा ही अर्हन्त है, वही निश्चय से सिद्ध है, वही आचार्य है और उसे ही उपाध्याय तथा साधु समझना चाहिए ।।१०४।।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा में कहते हैं—

अरहा सिद्धाइरिया, उवझाया साहु पंचपरमेठठी ।
ते विहु चेट्ठिदि जम्हा, तम्हा आदाहु मे सरणं ।।१२।।

अर्थ—अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु ये पांचों परमेष्ठी अपनी-अपनी आत्मा का ही अनुभव करते हैं । इसलिए मेरे को भी एक अपनी आतमा ही शरण है ।

चत्तारि दडंक पाठ—चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो । चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

अर्थ—अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म ये चा ही मंगल रूप हैं और चारों ही लोकोत्तम हैं एवं चारों ही की श लेना योग्य है।

ऊपर दिया हुआ णमोकार मंत्र और चत्तारि दण्डक पाठ शुद्ध पाठ है। यही पाठ बोलना चाहिये।

१. प्रश्न—णमोकार मंत्र कब से शुरू हुआ ?

उत्तर—भाव णमोकार मंत्र तो अनादि से है, इस काल शाब्दिक रचना पट्खंडागम ग्रन्थ के रचयिता आचार्य भूतबलि ने है।

२. प्रश्न—णमोकार मन्त्र को महामन्त्र क्यों कहते हैं ?

उत्तर—णमोकार मन्त्र से लौकिक और पंच परमेष्ठी स्वरूप को समझकर अपनी अभेद अखण्ड आत्मा के अनुभव करने आत्मा की सिद्धि प्राप्त होती है। अतः यह महामन्त्र हैं। अ मन्त्र लौकिक सिद्धियां ही देते हैं।

३. प्रश्न—णमोकार मन्त्र में णमो अरिहंताणं या अरहन्त ठीक कौनसा है ?

उत्तर—दोनों ठीक हैं किन्तु 'णमो अरिहन्ताणं' व्यापक अर्थ वाला है अतः पट्खंडागम में यही पाठ दिया है "अरिहंताणं" का अर्थ 'पूज्य' और 'कर्मशत्रुहंता' दोनों होते हैं जब "अरहंताणं" का एक 'पूज्य' अर्थ ही होता है।

४. प्रश्न—कहीं पर अरिहंत मंगलं और अ मंगलं आदि पाठ मिलता है इनमें कौनसा पाठ शु

उत्तर—दोनों पाठ शुद्ध हैं। समास करने पाठ बनता है। विना समास के 'अरिहंता मंग

५. प्रश्न—कहीं णमो अरिहंताणं और आता है। इनमें कौन सही है ? णमोकार मन्त्र

उत्तर—प्राकृत व्याकरण की दृष्टि से, णमो अरिहंताणं,
र शुद्ध हैं। पंचपरमेष्ठी जो मोक्ष साधक और साक्षात् मोक्ष रूप
न्हें लक्ष्यकर प्राकृत भाषा में इस णमोकार (नमस्कार) मन्त्र
रचना की गई है ?

६. प्रश्न—'पंच नमस्कार मन्त्र' के पांचों पदों में से सिर्फ
खिरी पद में ही 'लोए' और 'सव्व' विशेषण लगाया गया है
कि अन्य पदों में नहीं ऐसा क्यों ? तथा इस मन्त्र को कितनी वार
ना चाहिए। इसके साथ क्या 'ऐसो पंच णमोयारो' पद भी
लना चाहिए ?

उत्तर—इस णमोकार मन्त्र में 'सव्व' और 'लोए' पद अन्त
पक हैं। जिस प्रकार दीपक भीतर रख देने से भीतर के समस्त
ार्थों का प्रकाशन करता है, उसी प्रकार उक्त दोनों पद भी अन्य
ास्त पदों के ऊपर प्रकाश डालते हैं। अतः सम्पूर्ण क्षेत्र में रहने
ले त्रिकालवर्ती अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं
नमस्कार हो। ऐसा समझना चाहिये। धवला प्र.पु.पृ. ५२-५३।

इसे कम से कम १०८ वार जपना चाहिये। अधिक से अधिक
तना भी जप सकते हैं। 'ऐसो पंच णमोयारो.......' वोलने की
वश्यकता नहीं, क्योंकि इसमें तो सिर्फ उस णमोकार मन्त्र की
हिमा बतलाई है। महिमावान् वह मन्त्र स्वयं है।

७. प्रश्न--जब सिद्ध भगवान बड़े हैं तो अरहंत भगवान् को
हिले नमस्कार क्यों किया है ?

उत्तर—धर्म-मार्ग अरहंत भगवान की वाणी और उनके
र्शन से मिलता है, इसलिए सर्वप्रथम उनको नमस्कार किया है।
सद्ध भगवान का उपदेश नहीं मिलता और न उनके दर्शन भी हम
ामने कर सकते हैं, इससे उनको वाद में नमस्कार किया है।
योंकि हमको धर्म चाहिए।

अर्थ—अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म ये चारों ही मंगल रूप हैं और चारों ही लोकोत्तम हैं एवं चारों ही की शरण लेना योग्य है।

ऊपर दिया हुआ णमोकार मंत्र और चत्तारि दंडक पाठ शुद्ध पाठ है। यही पाठ बोलना चाहिये।

१. प्रश्न—णमोकार मंत्र कब से शुरू हुआ ?

उत्तर—भाव णमोकार मंत्र तो अनादि से है, इस काल शाब्दिक रचना षट्खंडागम ग्रन्थ के रचयिता आचार्य भूतवलि ने है।

२. प्रश्न—णमोकार मन्त्र को महामन्त्र क्यों कहते हैं ?

उत्तर—णमोकार मन्त्र से लौकिक और पंच परमेष्ठी स्वरूप को समझकर अपनी अभेद अखण्ड आत्मा के अनुभव करने आत्मा की सिद्धि प्राप्त होती है। अतः यह महामन्त्र हैं। अ मन्त्र लौकिक सिद्धियां ही देते हैं।

३. प्रश्न—णमोकार मन्त्र में णमो अरिहंताणं या अरहन्ता ठीक कौनसा है ?

उत्तर—दोनों ठीक हैं किन्तु 'णमो अरिहन्ताणं' ज्य व्यापक अर्थ वाला है अतः षट्खंडागम में यही पाठ दिया है। "अरिहंताणं" का अर्थ 'पूज्य' और 'कर्मशत्रुहंता' दोनों होते हैं जबकि "अरहंताणं" का एक 'पूज्य' अर्थ ही होता है।

४. प्रश्न—कहीं पर अरिहंत मंगलं और कहीं पर अरिहंता मंगलं आदि पाठ मिलता है इनमें कौनसा पाठ शुद्ध है ?

उत्तर—दोनों पाठ शुद्ध हैं। समास करने पर 'अरिहंत मंगलं' पाठ बनता है। बिना समास के 'अरिहंता मंगलं' पाठ बनता है।

५. प्रश्न—कहीं णमो अरिहंताणं और कहीं नमो अरिहंतानं आता है। इनमें कौन सही है ? णमोकार मन्त्र का आधार क्या है ?

उ—शरीर संयम का साधन है, इसलिए शरीर को स्थिर रखने के लिए साधु आहार-पानी ग्रहण करते हैं, व्यवहारनय के इस कथन को अनेक अज्ञानी जीव परमार्थभूत मान कर बाह्य क्रियाकांड में ही उलझे रहते हैं और साक्षात् मोक्षमार्ग क्या है इससे अनभिज्ञ रहते हैं। प्रथम अरिहंत को नमस्कार करने से हमें यह ज्ञान होता है कि शरीर संयम का साधन है यह उपचार कथन है। वास्तव में संयम का साधन तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र की प्राप्ति है। इस प्रकार व्यवहार(उपचार)मोक्ष-मार्ग से रुचि को हटा कर निश्चय(यथार्थ) मोक्ष-मार्ग में रुचि उत्पन्न करने के लिए अरिहंत परमेष्ठी दृष्टान्त रूप हैं।

इत्यादि अनेक लौकिक और अलौकिक हेतुओं को ध्यान में रख कर अरिहंतों को पञ्च नमस्कार मंत्र में सर्व प्रथम नमस्कार किया गया है।

१०. प्रश्न—णमोकार मंत्र में पंचपरमेष्ठी को लिया है किन्तु "चत्तारि मंगलं" में आचार्य उपाध्याय को क्यों छोड़ दिया ?

उत्तर—चार मंगलोत्तम शरण के अन्तर्गत साधु में आचार्य उपाध्याय का ग्रहण हो जाता है क्योंकि आचार्य उपाध्याय भी साधु ही हैं। आचार्यादि व्यवहार से दिये गए पद हैं। अन्तरंग में स्वरूप विश्रान्ति में कोई फरक नहीं है।

११. प्रश्न—गणधर स्वयं आचार्य हैं, फिर वे पञ्चपरमेष्ठी को नमस्कार क्यों करते हैं ?

उत्तर—अरिहंत और सिद्ध तो साक्षात् परमात्मा हैं, इसलिए स्वभाव के अनुरूप उनकी पर्याय प्रकट होने से वे नमस्कार करने योग्य हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु भी स्वभाव सन्मुख हो तथा बाह्य अभ्यन्तर उपाधि से रहित हो आत्मसाधना में निरन्तर तल्लीन रहते हैं, इसलिए वे भी नमस्कार करने योग्य हैं। यही कारण है कि

८. प्रश्न—अरहंतसिद्ध में सर्व प्रथम अरहंत का नाम क्यों जबकि गुणों की अपेक्षा सिद्ध का नाम आना चाहिये।

उत्तर--अरहंत भगवान् मोक्ष-मार्ग के उपदेष्टा हैं। विश्व **कल्याण मार्ग** बताने वाले हैं अतः उनको प्रथम नमस्कार किया वे देव भी हैं, उपदेष्टा होने से शास्त्र और गुरु भी हैं। अर्थात् ...ने शास्त्र का रूप है, उपदेष्ट होने से गुरु हैं। सिद्ध सिर्फ देव हैं शास्त्र और गुरु के स्थानापन्न नहीं हैं।

९. प्रश्न--णमोकार मंत्र में अरिहंत हमारे उपकारी इसलिये उन्हें प्रथम नमस्कार किया गया है। किन्तु लक्ष्य की दृ से सिद्ध मुख्य हैं, अतः वे ही सर्व प्रथम वन्दनीय होने ।हि अलौकिक मोक्ष-मार्ग में यह लौकिक पद्धति क्यों अपनाई गई है?

उत्तर--निश्चय स्वरूप मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति का लक्ष्य द्रव्यार्थिकनय का विषयभूत शुद्ध आत्मा है, सिद्ध पर्याय नहीं। रही नमस्कार की बात सो अरिहंतों को प्रथम नमस्कार करने के कारण हैं--

अ—मोक्ष-मार्ग का स्वरूप क्या है यह ज्ञान हमें अरिहंतो होता है, सिद्धों से नहीं।

आ--दिव्यध्वनि द्वारा द्रव्यश्रुत की प्रवृत्ति अरिहंतों निमित्त कर होती है, सिद्धों को निमित्त कर नहीं।

इ—सिद्धों और अरिहंतों में यदि कोई भेद है तो इतना ही कि सिद्ध अशरीरी हैं और अरिहंत सशरीरी। अनन्त चतुष्टय स्वरूपोपलब्धि की दृष्टि से उनमें वास्तविक कोई भेद नहीं है।

ई--अरिहंत सशरीरी हैं और संसारी आत्मा भी सशरीरी है ऐसी अवस्था में अरिहंतों का खयाल आते ही यह निश्चय सहज आता है कि जिस प्रकार शरीर में रहते हुए भी अरिहंत शरीर सर्वथा भिन्न हैं। उसी प्रकार मैं भी शरीर से सर्वथा भिन्न हूँ।

ो प्रभुत्व मानने के कारण रूप अनेक अतिशय और नाना प्रकार ; वैभव का संयुक्तपना पाया जाता है, तथा जिनकी अपने हित के र्थ गणधर-इन्द्रादिक उत्तम जीव सेवा करते हैं। ऐसे सर्वप्रकार से जने योग्य श्री अरहन्त देव हैं उन्हें हमारा नमस्कार हो।

सिद्धों का स्वरूप—अब सिद्धों का स्वरूप ध्याते हैं :—जो हस्थ-अवस्था को त्याग कर, मुनिधर्म-साधन द्वारा घातिकर्मों का ाश होने पर अनंतचतुष्टय स्वभाव प्रगट करके, कुछ काल पीछे ार अघाति कर्मों के भी भस्म होने पर परम-औदारिक शरीर को ी छोड़कर ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग में जाकर वराजमान हुए, वहां समस्त परद्रव्यों का सम्वन्ध छूटने से मुक्त वस्था की सिद्धि हुई, तथा जिनके चरम शरीर से किंचित् न्यून रुपाकारवत् आत्म प्रदेशों का आकार अवस्थित हुआ, तथा जिनके तिपक्षी कर्मों का नाश हुआ इसलिए समस्त सम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शना- दिक आत्मिक गुण सम्पूर्णतया अपने स्वभाव को प्राप्त हुए हैं, तथा जनके नोकर्म का सम्वन्ध दूर हुआ इसलिए समस्त अमूर्तत्वादिक आत्मिक धर्म प्रगट हुए हैं, तथा जिनके भाव कर्म का अभाव हुआ सलिये निराकुल आनन्दमय शुद्ध स्वभावरूप परिणमन हो रहा है, था जिनके ध्यान द्वारा भव्य जीवों को स्वद्रव्य-परद्रव्य का और औपाधिकभाव-स्वभाव भावों का विज्ञान होता है, जिसके द्वारा उन सिद्धों के समान स्वयं होने का साधन होता है। इसलिये साधने योग्य जो अपना शुद्ध स्वरूप उसे दर्शाने को प्रतिबिम्ब समान हैं तथा जो कृतकृत्य हुये हैं इसलिये ऐसे ही अनंतकाल पर्यन्त रहते हैं। ऐसे निष्पन्न हुये सिद्ध भगवान को हमारा नमस्कार हो।

अब आचार्य-उपाध्याय-साधु के स्वरूप का अवलोकन करते हैं :—

(आचार्य-उपाध्याय-साधु का सामान्य स्वरूप) जिनके अनंता- नुबन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान सम्बन्धी कषायों के अभाव

गणधरदेव सब सिद्धों को और ढाई द्वीप सम्बन्धी अरिहंतादि परमेष्ठियों को नमस्कार करते हैं।

१२. प्रश्न—आचार्य, उपाध्याय और साधु जब णमोकार पढ़ते हैं तो उसमें उनको स्वयं को भी नमस्कार आ गया। तब वास्ते नमस्कार करना उचित है क्या ?

उत्तर—जैन-धर्म में गुण की पूजा होती है, पद या भेष पूजा-भक्ति नहीं की जाती है। ये तीनों साधु के पद हैं और आंशि शुद्धता (संवर निर्जरा) रूप है। और यही मोक्ष मार्ग है। वे शुद्धता को नमस्कार कर रहे हैं। फिर भाव नमस्कार तो आत्मा भक्ति ही है। पंच परमेष्ठी का ध्यान, भक्ति शुभ भाव हैं। आत्म ध्यान (मग्नता) शुद्ध भाव है। यह शुद्ध भाव ही पूज्य (आदरणीय) है

१३. प्रश्न—पंच परमेष्ठी का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—पंच परमेष्ठी का स्वरूप निम्न प्रकार है—

अरिहंतों का स्वरूप—यहाँ प्रथम अरहन्तों के स्वरूप विचार करते हैं :—जो गृहस्थपना त्याग कर मुनिधर्म अंगीका करके निजस्वभाव साधन द्वारा चार घाति कर्मों का क्षय कर अनंतचतुष्टयरूप विराजमान हुए, वहाँ अनंतज्ञान द्वारा तो अ अनन्तगुणपर्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्यों को युगपत् विशेष से प्रत्यक्ष जानते हैं, अनंतदर्शन द्वारा उनका सामान्य अवलोकन कर हैं, अनंतवीर्य द्वारा ऐसी सामर्थ्य को धारण करते हैं, अनंत सुख द्वार निराकुल परमानन्द का अनुभव करते हैं। पुनश्च, जो सर्वथा स रागद्वेषादि विकार भावों रहित होकर शान्तरसरूप परिणमित हु हैं तथा क्षुधा-तृषादि समस्त दोषों से मुक्त होकर देवाधिदेवपने को प्राप्त हुए हैं तथा आयुध-अंबरादिक व अंगविकारादिक जो काम क्रोधादि निंद्यभावों के चिह्न उनसे रहित जिनका परम-औदारिक शरीर हुआ है, तथा जिनके वचनों से लोक में धर्मतीर्थ प्रवर्तता है जिनके द्वारा जीवों का कल्याण होता है, तथा जिनके लौकिक जीवों

ो प्रभुत्व मानने के कारण रूप अनेक अतिशय और नाना प्रकार
वैभव का संयुक्तपना पाया जाता है, तथा जिनकी अपने हित के
र्थ गणधर-इन्द्रादिक उत्तम जीव सेवा करते हैं। ऐसे सर्वप्रकार से
जने योग्य श्री अरहन्त देव हैं उन्हें हमारा नमस्कार हो।

सिद्धों का स्वरूप—अब सिद्धों का स्वरूप ध्याते हैं:—जो
हस्थ-अवस्था को त्याग कर, मुनिधर्म-साधन द्वारा घातिकर्मों का
ाश होने पर अनंतचतुष्टय स्वभाव प्रगट करके, कुछ काल पीछे
ार अघाति कर्मों के भी भस्म होने पर परम-औदारिक शरीर को
ी छोड़कर ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग में जाकर
िराजमान हुए, वहां समस्त परद्रव्यों का सम्बन्ध छूटने से मुक्त
ावस्था की सिद्धि हुई, तथा जिनके चरम शरीर से किंचित् न्यून
ुरुपाकारवत् आत्म प्रदेशों का आकार अवस्थित हुआ, तथा जिनके
ातिपक्षी कर्मों का नाश हुआ इसलिए समस्त सम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शना-
देक आत्मिक गुण सम्पूर्णतया अपने स्वभाव को प्राप्त हुए हैं, तथा
जनके नोकर्म का सम्बन्ध दूर हुआ इसलिए समस्त अमूर्तत्वादिक
ात्मिक धर्म प्रगट हुए हैं, तथा जिनके भाव कर्म का अभाव हुआ
सलिये निराकुल आनन्दमय शुद्ध स्वभावरूप परिणमन हो रहा है,
था जिनके ध्यान द्वारा भव्य जीवों को स्वद्रव्य-परद्रव्य का और
औपाधिकभाव-स्वभाव भावों का विज्ञान होता है, जिसके द्वारा उन
सिद्धों के समान स्वयं होने का साधन होता है। इसलिये साधने योग्य
जो अपना शुद्ध स्वरूप उसे दर्शाने को प्रतिविम्ब समान हैं तथा
जो कृतकृत्य हुये हैं इसलिये ऐसे ही अनंतकाल पर्यन्त रहते हैं। ऐसे
निष्पन्न हुये सिद्ध भगवान को हमारा नमस्कार हो।

अब आचार्य-उपाध्याय-साधु के स्वरूप का अवलोकन करते हैं:—

(आचार्य-उपाध्याय-साधु का सामान्य स्वरूप) जिनके अनंता-
नुवन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान सम्बन्धी कषायों के अभाव

रूप शुद्धि तो निरन्तर वर्तती है, जो शुद्धि है वह वीतराग रूप है।
सकल चारित्र कहते हैं। जो विरागी होकर, समस्त परिग्रह का
करके, शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके अंतरंग में तो
शुद्धोपयोग द्वारा अपने को आपरूप अनुभव करते हैं, परद्रव्य में
बुद्धि धारण नहीं करते तथा अपने ज्ञानादिक स्वभाव को ही अ
मानते हैं, परभावों में ममत्व नहीं करते तथा जो परद्रव्य व
स्वभाव ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं उन्हें जानते तो हैं परन्तु
अनिष्ट मानकर उनमें रागद्वेष नहीं करते, शरीर की अनेक अवस्
होती हैं, बाह्य में नाना निमित्त बनते हैं, परन्तु वहां कुछ भी सुख
दुःख नहीं मानते, तथा अपने योग्य बाह्य क्रिया जैसे बनती है
बनती है, खींझकर उनको नहीं करते, तथा अपने उपयोग को
नहीं भ्रमाते हैं, उदासीन होकर निश्चलवृत्ति को धारण क
तथा कदाचित् मंदराग के उदय से शुभोपयोग भी होता है उससे
शुद्धोपयोग के बाह्य साधन हैं उनमें अनुराग करते हैं, परन्तु
रागभाव को हेय जानकर दूर करना चाहते हैं तथा तीव्र कष
उदय का अभाव होने से हिंसादिरूप अशुभोपयोग परिणति का
अस्तित्व ही नहीं रहा है तथा ऐसी अंतरंग अवस्था होने पर
दिगम्बर सौम्यमुद्राधारी हुए हैं, शरीर का संवारना आदि वि
से रहित हुये हैं, वन-खण्डादि में वास करते हैं, अट्ठाईस मूलगुणों
अखण्डित पालन करते हैं, बाईस परीषहों को सहन करते हैं,
प्रकार के तपों को आदरते हैं, कदाचित् ध्यानमुद्रा धारण क
प्रतिमावत् निश्चल होते हैं, कदाचित् अध्ययनादिक बाह्य धर्मक्रि
में प्रवर्तते हैं, कदाचित् मुनिधर्म के सहकारी शरीर की स्थिति के
हेतु योग्य आहार-विहारादि क्रियाओं में सावधान होते हैं। ऐसे जैन
हैं उन सबकी ऐसी ही अवस्था होती है।

आचार्य का स्वरूप — उनमें जो सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्
[illegible] अधिकता से प्रधानपद प्राप्त करके संघ में नायक हुए

हैं, तथा जो पुनरभ्यासे जो निर्विकल्प स्वरूपाचरणमें ही मग्न और जो कदाचित् धर्मके लोभी अन्य जीव-याचक-उनको देखकर राग अंशके उदयसे करुणाबुद्धि हो तो उनको धर्मोपदेश देते हैं, दीक्षाग्राहक हैं उनको दीक्षा देते हैं, जो अपने दोषों को प्रगट करते हैं उनको प्रायश्चित विधिसे शुद्ध करते हैं। ऐसे आचरण आचराने वाले आचार्य उनको हमारा नमस्कार हो।

उपाध्याय का स्वरूप—तथा जो बहुत जैन शास्त्रों के ज्ञाता होकर संघमें पठन-पाठनके अधिकारी हुए हैं, तथा जो समस्त शास्त्रोंको प्रयोजनभूत जान एकाग्र हो अपने स्वरूपको ध्याते हैं, और यदि कदाचित् कषाय अंशके उदयसे वहां उपयोग स्थिर न हो तो उन शास्त्रोंको स्वयं पढ़ते हैं तथा अन्य धर्मबुद्धियों को पढ़ाते हैं। ऐसे समीपवर्ती भव्योंको अध्ययन करानेवाले उपाध्याय उनको हमारा नमस्कार हो।

साधु का स्वरूप—पुनश्च, इन दो पदवी धारकों के बिना अन्य समस्त जो मुनिपदके धारक हैं तथा जो आत्मस्वभाव को साधते हैं, जैसे अपना उपयोग परद्रव्योंमें इष्ट-अनिष्टपना मानकर फंसे नहीं व भागे नहीं वैसे उपयोग को साधते हैं और बाह्यमें उसके साधनभूत तपश्चरणादि क्रियाओंमें प्रवर्तते हैं तथा कदाचित् भक्ति-वंदनादि कार्यों में प्रवर्तते हैं। ऐसे आत्मस्वभावके साधक साधु हैं उनको हमारा नमस्कार हो।

१८. प्रश्न—मोक्ष प्राप्त करने के लिए णमोकार मंत्र का कितना जाप करना चाहिये।

उत्तर—णमोकार मंत्र जपने से केवल पुण्य बंध हो सकता है, किन्तु संसार से नहीं छूट सकते। मुक्ति के लिए निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (स्वभाव) प्रगट कर आत्मध्यान करना चाहिए। णमोकार मंत्र का जाप आत्मध्यान सीखने में सहायक है। और आत्मध्यान मोक्ष प्राप्ति में प्रमुख सहायक है।

संरंभ, समारम्भ, आरम्भ, मन वच तन कीने प्रारम्भ।
कृत कारित अनुमोदन करके, क्रोधादि चतुष्टय धरके।
शत आठ जो इन भेदन तें, अघ कीने पर छेदन तें॥

जब यह प्राणी अशुभ कार्य करने का विचार करता है तब १०८ तरह से पापों का बंध होता रहता है और जितने समय णमोकार मन्त्र की माला जपता है तब तक शुभ भाव रहने से (मंद कषाय होने से) पुण्य का बंध होता है। विशेष जानकारी इस प्रकार है—

शुभ या अशुभ कार्य करने के १०८ द्वार निम्नलिखित हैं—

१. मन (विचार करना), २. वचन (कहना), ३. शरीर (कोई कार्य करना)।

१. कृत (स्वयं करना) २. कारित (अन्य से कराना), ३. अनुमोदन (किसी के किये हुए काम की सराहना करना)।

१. संरंभ (करने का संकल्प-इरादा करना) २. समारम्भ (काम करने के साधन जोड़ना), ३. आरम्भ (काम को प्रारम्भ शुरू कर देना)।

ये सब कार्य १. क्रोध वश किसी को मारने पीटने के लिये किये जावें। अथवा २. अभिमान वश किसी को अपमानित (बेइज्जत) करने के विचार से किये जावें। ३. या मायाचार के रूप में किसी को धोखा देने के इरादे से इनको किया जाता है अथवा ४. लोभवश होकर जीव ऊपर लिखे ढंगों को अपनाकर काम करता है।

तदनुसार :—

१—मन कृत संरम्भ (मन में स्वयं किसी काम करने का इरादा किया हो)।

२—मन कृत समारम्भ (मन में स्वयं करने के लिए [illegible] जोड़ने का विचार)।

३—मन कृत आरम्भ (मन में किसी कार्य को स्वयं आ[illegible] करने का विचार)।

४—मन कारित संरम्भ (मन में दूसरे के द्वारा काम [illegible] का विचार)।

५—मन कारित समारम्भ (मन में दूसरे के द्वारा [illegible] कराने की साधन-सामग्री का विचार)।

६—मन कारित आरम्भ (मन में अन्य द्वारा कार्य आ[illegible] करा देने की भावना)।

७—मन अनुमोदना संरम्भ (मन में अन्य के किये गये [illegible] पर सराहना करने का इरादा करना) ।

८—मन अनुमोदना समारम्भ (मन में अन्य के काम [illegible] सराहना करने के साधन जुटाने की भावना) ।

९—मन अनुमोदना आरम्भ (मन में किसी के काम [illegible] सराहना कर डालने का विचार) ।

१०—वचनकृत संरम्भ, ११. वचन कृत समारम्भ, [illegible] वचन कृत आरम्भ १३. वचन कारित संरम्भ, १४. वचन का[illegible] समारम्भ, १५. वचन कारित आरम्भ, १६. वचन अनुमोदना सं[illegible] १७. वचन अनुमोदना समारम्भ, १८. वचन अनुमोदना आरम्भ। इसी प्रकार—

१९. शरीर कृत संरम्भ, २०. शरीर कृत समारम्भ, २[illegible] शरीर कृत आरम्भ, २२. शरीर कारित संरम्भ, २३. शरीर कारि[illegible] समारम्भ, २४. शरीर कारित आरम्भ, २५. शरीर अनुमोद[illegible] संरम्भ, २६. शरीर अनुमोदना समारम्भ और २७. शरी[illegible] अनुमोदना आरम्भ।

२७ प्रकार कार्य करने के ढंग क्रोध के कारण होते हैं।

२७ प्रकार के कार्य मान के कारण होते हैं।

२७ प्रकार के माया (छल कपट) द्वारा किये जाते हैं।

२७ प्रकार से ही लोभ द्वारा भी कार्य करने में आते हैं।

इस प्रकार सब मिलकर कार्य करने के ढंग १०८ प्रकार के हैं। इन १०८ प्रकारों से किये गये पाप कार्यों से छुटकारा पाने के विचार से जाप की माला में १०८ दाने रखे गये हैं।

२० प्रश्न—माला में १०८ दानों के अलावा ऊपर तीन दाने (मणिये) क्यों लगाये गये हैं ?

उत्तर—ये तीन दाने निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जानकारी कराते हैं क्योंकि ये तीनों आत्मा के स्वभाव हैं, इन तीनों की एकता को ही मोक्षमार्ग कहा है, कहा भी है—सम्यक्दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः १।१ तत्वार्थ सूत्र। इसमें मोक्षमार्गः एक वचन है, इसलिए तीनों की एक रूपता ही मोक्षमार्ग है। यह चतुर्थ गुणस्थान से शुरू होता है। इसी मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ करके पूर्णता होने पर पूर्ण वीतरागी होकर अरिहंत, सिद्ध भगवान हुये हैं और इसी मोक्षमार्ग के पुरुषार्थ से एक देश वीतरागी आचार्य, उपाध्याय, साधु होते हैं और पूर्ण वीतरागी होने का पुरुषार्थ करते रहते हैं। ये पंच परमेष्ठी बता रहे हैं कि प्रत्येक जीव अनादिकाल से अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनज्ञान चारित्र कोअपनी भूल से आत्मामें लगा रहे हैं, जब यह जीव तत्त्व निर्णय करके अपनी अभेद अखण्ड आत्मा का श्रद्धान ज्ञान अनुभव करता है (इसी ही को निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र कहते हैं) तब आत्म-स्वभाव की प्राप्ति अल्प काल के लिये होती है, और मोक्षमार्ग शुरू होता है तब ही मनुष्य भव पाने की सफलता होती है।

आज तक इस जीव ने णमोकार मन्त्र की माला तो अनेक भवों में अनेक वार फेरी जिससे मन्द कषाय होने से पुण्य बन्ध किया परन्तु अपनी आत्मा के स्वभाव का आश्रय नहीं लिया जिससे संसार का ही पात्र बना रहा। इसलिये भावलिंगी सन्तों का उपदेश है कि प्रत्येक मुमुक्षु निश्चय रत्नत्रय (आत्मस्वभाव) का आश्रय लेकर उसी का पुरुषार्थ करे।

दूसरा अधिकार

१. प्रश्न—शलाका पुरुषों में 'शलाका' शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर—'लोक में प्रसिद्ध, विशेष पुण्यशाली पुरुषश्रेष्ठ, को शलाका पुरुष कहा जाता है।

२. प्रश्न—त्रेसठ शलाका पुरुष सम्यग्दृष्टि होते हैं या मिथ्या दृष्टि ?

उत्तर—"त्रेसठशलाका" का वंध सम्यग्दर्शन होने के वाद ही होता है, मिथ्यादृष्टि को इनमें से एक का भी वंध नहीं होता है परन्तु :—(१) २४ तीर्थंकर तो सम्यग्दृष्टि ही होते हैं और उसी भव से मोक्ष जाते हैं। (२) वारह चक्रवर्ती में कोई मोक्ष जाता है, कोई स्वर्ग जाता है, और कोई सम्यक्त्व का अभाव करके सातवें नरक भी जाता है। (३) नव वलदेव सव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं कोई मोक्ष और कोई स्वर्ग जाता है। (४) नव नारायण और नव प्रतिनारायण इनका सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है और ये नरक जाते हैं।

३. प्रश्न—शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ ये तीनों तीर्थंकर तीन-तीन पद के धारी हुए तो ६३ शलाका के पुरुषों में न्यूनता तो आ गई।

उत्तर—पद ६३ ही होते हैं, उसमें कोई न्यूनता नहीं रही। मनुष्य संख्या की न्यूनता से उन पदों की कमी नहीं हुई। ६३ शलाका (पदों) की पूर्ति होना आवश्यक है।

४. प्रश्न—तीर्थंकर का जन्म होने वाला है यह कैसे पता चलता है ?

उत्तर—नगरी की सुन्दर नई रचना हो जाती है औ
की वर्षा होने लगती है।

५. प्रश्न—तीर्थंकर के गर्भ में आने के समय प्रतिदिन
रत्नों की वर्षा होती है?

उत्तर—प्रतिदिन प्रातः, दोपहर और शाम को १०॥
रत्नों की वर्षा होती है।

६. प्रश्न—तीर्थंकर की माता रजस्वला होती है या न

उत्तर—आदि पुराण के गर्भावतार पर्व में तीर्थंकर की
के रजस्वला होने का निषेध किया है। तथाहि श्लोक—
नाभिराजस्य पुष्पवत्यरजस्वला ॥ १०१ ॥ पर्व १२। तीर्थं
माता पिता के नीहार नहीं होता।

७. प्रश्न—तीर्थंकर की माता के गर्भावतार अवसर पर
कुमारी देवांगना सेवैं हैं। वे कौनसी हैं?

उत्तर—कल्पवासिनी इन्द्राणी १२, भवनवासिनी
इन्द्राणी २०, व्यन्तरेन्द्र की इन्द्राणी १६, चन्द्रमा की १, सूर्य
कुलाचलवासिनी श्री आदि ६, कुल ५६। इहां कोई कहै—श्री
कुलाचलवासिनी माता को सेवने आवे, इह तो सुनी है। अर
कुमारी सेवा करै हैं, तिनका नाम तथा स्थान का सेवा में
प्रसिद्ध नाहिं। यह क्यों कर जाना गया? समाधानः—इनका नाम
[illegible] जगह लिखा है। अर छः कुलाचलवासिनी गर्भ सोधना
[illegible] इन्द्राणी, माता की प्रच्छन्न सेवा करै, प्रगट नाहीं। [illegible]
[illegible] ही नियोग है। यह कथन श्री आदिपुराण विषें आया है।

८. प्रश्न—[illegible] क्षेत्र में तीर्थंकर चतुर्थ काल में ही [illegible]
[illegible]

[illegible]

९. प्रश्न—तीर्थंकर चौबीस ही क्यों होते हैं? कम अधिक क्यों नहीं?

उत्तर—प्रकृति के नियम में किसी का हस्तक्षेप नहीं चलता है।

१०. प्रश्न—तीर्थंकर राजाओं के यहाँ ही जन्म क्यों लेते हैं? किसी गरीब के यहाँ क्यों नहीं?

उत्तर—तीर्थंकर बनने वाले जीव का पुण्य भी उत्कृष्ट होने से वे राजाओं के यहाँ ही जन्म लेते हैं।

११. प्रश्न—चौबीसों तीर्थंकर क्षत्रिय ही क्यों हुए?

उत्तर—क्षत्रिय ही वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं। आत्मा से वीर पुरुष ही तीर्थंकर बन सकता है।

१२. प्रश्न—भगवान् के कल्याणकों में इन्द्रदेव स्वयं आते हैं या उनकी विक्रिया?

उत्तर—उनका वैक्रियक शरीर ही आता है।

१३. प्रश्न—सुदर्शन मेरु को क्या केवली भगवान के सिवाय अन्य ने देखा है?

उत्तर—जन्माभिषेक के समय देव जिन-बालक का अभिषेक जम्बूद्वीप के सुदर्शन मेरु पर करते हैं, वे वहाँ जिन-मन्दिरों की वन्दना के लिये भी जाते हैं। चारणऋद्धिधारी मुनिगण तथा विद्याधर भी जाते रहते हैं, अतः केवली भगवान के सिवाय अन्य जीवों ने उसे जाकर देखा है ऐसा आगम के स्वाध्याय से आप भी निर्णय ले सकते हैं?

१४. प्रश्न—होनहार तीर्थंकर के जन्म के १० अतिशय कौन कौन से हैं?

उत्तर—निम्न प्रकार हैं—१. तीर्थंकर के शरीर में पसीना न आना, २. मलमूत्र न होना, ३. दूध के समान सफेद खून होना, ४. समचतुरस्र संस्थान (शरीर के समस्त अंग उपांग ठीक होना, कोई भी अंग उपांग छोटा या बड़ा न होना), ५. वज्रऋषभनाराच संहनन (शरीर की हड्डी, उनके जोड़ और उनकी कीलें वज्र के समान दृढ़ होना), ६. अत्यन्त सुन्दरता, ७. मिष्ट परमप्रिय भाषा, ८. शरीर में सुगन्धि, ९. अतुल्य बल और १०. शरीर में १००८ शुभ लक्षण। ये १० अतिशय तीर्थंकर के शरीर में जन्म से ही होते हैं।

१५. प्रश्न—होनहार तीर्थंकर के शरीर में अनन्तबल कहा है उसका कहीं शास्त्र में प्रमाण है क्या ?

उत्तर—पं० मक्खनलालजी कृत भव्य प्रमोद में ऐसा लिखा है—

बलाबल

द्वादश अज बल एक जु गर्दभ, दश गर्दभ बल एक हय जान,
द्वादश हय बल एकजु महिषा, पांच सौ महिषा गज एक आन।
पांच सौ गज बल एक केशरी, पंच शतक अष्टापद जान,
अष्टापद दश लाख कोड़ि बलभद्र, कोड़ि इक नारान ॥
[illegible] नारायण बल चक्री, कोटि नरेन्द्र जु बल इक देव,
कोटि देव बल एक इन्द्र में, अनंत इन्द्र तीर्थंकर देव।
तीर्थंकर की छट्ठी उंगली, ताके बल को नाहिं अछेव,
तो शरीर बल कौन कहै कवि थके कथित गणधर बहु देव ॥

१६. प्रश्न—तीर्थंकर क्या बाल्य अवस्था से ही अवधिज्ञान [illegible] ज्ञान के धारी मानते हैं ?

उत्तर—मानते तो हैं, पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि की

सीमा लेकर ही जानते हैं, याने सम्पूर्ण काल और सम्पूर्ण क्षेत्र को बातें नहीं जानते, सीमित ही जानते हैं।

१७. प्रश्न—पद्मपुराण पर्व २ में लिखा है—कि सुमेरु पर्वत पर जिनाभिषेक के समय इन्द्र को शंका हुई कि इतने बड़े कलशों की जलधारा को बालक वर्द्धमान तीर्थङ्कर कैसे सहन कर सकेंगे ? ऐसी इन्द्र की आशंका को जानकर वर्द्धमान ने सुमेरु को कंपायमान किया। दूसरे के मन की बात जानना तो मनः पर्यय ज्ञान का विषय है। किन्तु बालक वर्द्धमान तो उस समय मनःपर्यय ज्ञान के धारी नहीं थे, फिर उन्होंने कैसे जान लिया ?

उत्तर—यह एक कवि की कल्पना है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि सौधर्म इन्द्र को न तो ऐसी शंका होना सम्भव है और न तीर्थंकर बालक उसे जान सकते हैं। यह घटना श्वेताम्बर शास्त्रों से ली गई अघट घटना है।

१८. प्रश्न—इन्द्रों ने भगवान का विशाल १००८ कलशों से अभिषेक किया तो इससे त्रसजीवों की हिंसा नहीं हुई ?

उत्तर—त्रिलोकसार में कहा है—

जलचर जीवा लवणे कालेयंतिम सयंभुरमणेय।
कम्म मही पडिबद्धे णहि सेसे जलयरा जीवा ॥३२०॥

कर्मभूमि से संबद्ध लवणसमुद्र, कालोदधिसमुद्र और अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र में जलचर जीव पाये जाते हैं। शेष समुद्रों में जलचर जीव नहीं होते। अतः क्षीरोदधि समुद्र के जल में त्रसजीव नहीं होते हैं।

१६. प्रश्न—तीर्थंकर के चिह्न कब रखे जाते हैं ?

उत्तर—तीर्थंकर के शरीर में जन्म से १००८ श्रीवत्स आदि चिह्न होते हैं। उनमें से उनके जन्म के समय दाहिने पैर के अंगूठे

में सौधर्म इन्द्र को जो चिह्न नजर आता है, वही उनका "चिह्न" यह इन्द्र निश्चित कर देता है। कहा भी है—

जम्मणकाले जस्सदु दाहिणपायम्मि होइ जो चिण्हं।
तं लक्खण पाउत्तं आगमसुत्ते सुजिणदेहं ॥

२०. प्रश्न—चौबीस तीर्थंकरों के चिह्न कौन कौन से हैं?

उत्तर—१ बैल, २ हाथी, ३ घोड़ा, ४ बन्दर, ५ चकवा, ६ कमल, ७ सांथिया, ८ चन्द्रमा, ९ मगर, १० अशोकवृक्ष, ११ गेंडा, १२ भैंसा, १३ शूकर, १४ सेही, १५ वज्रदंड, १६ हिरण, १७ बकरा, १८ मच्छ, १९ कलश, २० कछुआ, २१ नीलकमल, २२ शंख, २३ सर्प, २४ सिंह। चौबीसों के चिह्न ऐसे हैं। ये ही चिह्न मूर्तियों की चरण चौकी पर उत्कीर्ण होते हैं। इन्हीं से यह पहचान होती है कि यह मूर्ति अमुक तीर्थंकर की है।

२१. प्रश्न—होनहार तीर्थंकर जब बालक अवस्था में होते हैं उनको पहिनाने के लिये आभरण (आभूषण) इन्द्र कहां से लाता है?

उत्तर—सौधर्म इन्द्र के सभास्थान मण्डप के आगे १ योजन [illegible] और [illegible] योजन ऊंचा [illegible] बारह कोण वाला [illegible] है। इस मानस्तंभ में चौबीस कोश [illegible] और एक कोश [illegible] के गोल आभरण से भरे पिटारे हैं, [illegible] आभरण आते हैं।

२२. प्रश्न—[illegible] के नाम पूर्व निर्धारित होते हैं?

उत्तर—[illegible] के नाम पूर्व निर्धारित होते हैं। [illegible]

वैसे अन्य सभी जीवों के नाम और काम पूर्व तिथि निर्धारित हैं। क्योंकि सर्वज्ञ परमात्मा के ज्ञान में सबके नाम और काम क रहे हैं।

२३. प्रश्न—तीर्थङ्कर के खून का रंग सफेद क्यों होता है ?

उत्तर—जब मां अपने बालक को अधिक प्यार करती है तो का रस से खून न बनकर दूध बन जाता है फिर तीर्थङ्कर में विश्व मैत्रीभाव होता है, अतः उनका खून सफेद होता है।

२४. प्रश्न—तीर्थङ्कर बाल्य अवस्था में क्या अंगूठा ही चूसते या स्तनपान करते हैं और बड़े होने पर यदि आहार करते हैं कैसा आहार करते हैं, क्या माता पिता द्वारा तैयार किया हुआ हार करते हैं ?

उत्तर—बाल्यावस्था में उनके अंगूठे में इन्द्र अमृत का निक्षेप देता है उसे ही चूसते हैं स्तनपान नहीं करते। युवा अवस्था प्राप्त होने पर तीर्थंकर आहार करते हैं किन्तु वह आहार माता ा के द्वारा तैयार नहीं किया जाता अपितु इन्द्र से प्राप्त होता कहा भी है—

लोक—आसनं शयनं यानं भोजनं वसनानि च।
ारणादिकमन्यच्च सकलं तस्य शक्रजम् ॥३।२२॥ (पद्मपुराण)

अर्थ—आसन, शयन, वाहन, भोजन, वस्त्र तथा चारणादिक तना भी परिकर था। वह सब आदिनाथ महाराज को इन्द्र से प्त होता था। (ज्ञानपीठ पद्मपुराण प्रथम भाग पृष्ठ ४७)।

२५. प्रश्न—चौबीसों तीर्थङ्कर कौन कौन से वंश में हुये हैं ?

उत्तर—भगवान् महावीर नाथ वंश में उत्पन्न हुए। उग्र ा में भगवान् पार्श्वनाथ का जन्म हुआ। मुनिसुव्रतनाथ तथा मनाथ हरिवंश रूपी आकाश में सूर्य के समान हुए। धर्मनाथ,

कुन्थुनाथ और अरनाथ तीर्थङ्कर कुरुवंश में हुए। शेष १७ इक्ष्वाकु वंश में हुए।

२६. प्रश्न—चौबीसों तीर्थङ्करोंका शरीरका वर्ण कैसा है?

उत्तर—पुष्पदन्त और चन्द्रप्रभ भगवान् के शरीर का चन्द्रमा के समान सफेद है। पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ का पन्ने के समान रंग है, वासुपूज्य और पद्मप्रभ का लालमणि प्रभा जैसा है, मुनिसुव्रत और नेमिनाथ का सांवला (नील सरीखा) है, जिसे देखकर देवों और मनुष्यों का मन मोहित जाता है, और शेष १६ तीर्थङ्कर का वर्ण सोने की कांति के समान है।

२७. प्रश्न—चौबीसों तीर्थङ्करों के शरीर की ऊंचाई कितनी है?

उत्तर—श्री ऋषभनाथ आदि तीर्थङ्करों के शरीर की अवगाहना (ऊंचाई) क्रम से—५००, ४५०, ४००, ३५०, ३००, २५०, २००, १५०, १००, ९०, ८०, ७०, ६०, ५०, ४५, ४०, ३५, ३०, २५, २०, १५, १० धनुष, ९ हाथ, ७ हाथ है।

२८. प्रश्न—चौबीसों तीर्थङ्करों की आयु कितनी कितनी है?

उत्तर—८४ लाख पूर्व, ७२ लाख पूर्व, ६० लाख पूर्व, [illegible] पूर्व, ४० लाख पूर्व, ३० लाख पूर्व, २० लाख पूर्व, १० [illegible] लाख पूर्व, २ लाख पूर्व, ८४ लाख वर्ष, ७२ लाख वर्ष, [illegible] लाख वर्ष, ३० लाख वर्ष, १० लाख वर्ष, १ लाख वर्ष, ९५ [illegible] हजार वर्ष ५५ हजार वर्ष, ३० हजार, वर्ष १० हजार [illegible] वर्ष, १०० वर्ष और ७२ वर्ष की आयु क्रम से श्री ऋषभ [illegible]

[illegible]

[illegible]

उत्तर—किस तीर्थंकर का जन्म कब हुआ आदि मिति केवली भगवान् की दिव्यध्वनि से ज्ञात होती थी, वही मिति आचार्य परम्परा से चली आ रही है। पांचों कल्याणकों के भी कायम हैं उनसे तिथियों की शुद्धता अशुद्धता का पता लग है। विक्रम संवत् से पूर्व वीर निर्वाण संवत् था।

३२. प्रश्न—महावीर भगवान् के पांच नाम कैसे हुये?

उत्तर—शिशु समय में भी १००८ कलशों के जल अभिषेक सहन कर लेने के कारण इन्द्र ने अन्तिम तीर्थंकर का नाम रखा। उत्पन्न होते ही माता-पिता का वैभव, पराक्रम गया इस कारण वीर प्रभु का दूसरा नाम 'वर्द्धमान' प्रसिद्ध हु संजय, विजय नामक चारणऋद्धि धारी मुनियों का संशय वीरप्रभु के दर्शन करते ही मिट गया इस कारण उनका 'सन्मति' प्रख्यात हुआ। भयानक सर्प से भयभीत न होने के उनका नाम अतिवीर प्रसिद्ध हुआ और मदोन्मत्त हाथी को करने से महावीर नाम प्रसिद्ध हुआ।

३३. प्रश्न—तीर्थङ्कर के पैदा होते ही क्या असाधा घटनायें घटती हैं?

उत्तर—क्षण भर के लिए तीनों लोकों के जीवों शान्ति का भान होने लगता है। इन्द्रों के भी आसन कम्पाय होने लगते हैं।

३४. प्रश्न—क्या तीर्थङ्कर जन्म से संयमी या व्रती होते हैं

उत्तर—आदिपुराण में लिखा है—

स्यात् राद्यष्टवर्षेभ्यः सर्वेषां परतो भवेत्।
उदिताष्टकषायाणां तीर्थेशां देशसंयमः ॥६३५॥

सब तीर्थङ्करों के अपनी आयु के आरम्भ से आठ वर्ष के देशसंयम होता है। उनके प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन ...ाय होने से उस अवस्था में महाव्रत नहीं होते हैं।

३५. प्रश्न—मुनि अवस्था के पूर्व क्या तीर्थङ्कर भगवान ...व्रत पालते थे? क्या उनके अनेक रानियां भी होती हैं? विषय ...वास के समय उनको द्रव्य और भाव हिंसा लगती है या नहीं?

उत्तर—उत्तर पुराण पर्व ५३ श्लोक ३५ में आया है कि ...ठ वर्ष की आयु के पश्चात् सभी तीर्थङ्कर देशसंयम का पालन ...रते हैं। उनके एक से अधिक रानियां भी हो सकती हैं। जैसे ...दिनाथ के दो रानियां थी तथा शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ ... ९६००० जिनमें हजार रानियां थी, क्योंकि वे चक्रवर्ती भी थे। ...हिंसा तो गृहस्थी में भावों के अनुसार यथायोग्य लगती ही है।

३६. प्रश्न—"भारतीय धर्म और संस्कृति" पुस्तक में भगवान ...हावीर का विवाह, कन्या का जन्म और दीक्षा के बाद वस्त्रधारण ...लखा है, क्या यह चरित्र सही है?

उत्तर—श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार यह जीवनचरित्र लिखा गया होगा। दिगम्बर मान्यता में वे बालब्रह्मचारी और दीक्षा के बाद नग्न ही रहे हैं।

३७. प्रश्न—चौबीसों तीर्थङ्करों में बालब्रह्मचारी कौन-कौन हुये?

उत्तर—वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर ये पांच बाल ब्रह्मचारी थे, कुमार अवस्था में ही इन्होंने मुनि दीक्षा ली थी।

३८. प्रश्न—तीर्थंकर के वैराग्य के समय लौकांतिक देव कितने आते हैं?

उत्तर—आठ प्रकार के सभी लौकांतिक देव आते हैं। ... में अगणित होते हैं।

३९. प्रश्न—क्या तीर्थङ्करों के दाढ़ी, मूंछ नहीं होती?

उत्तर—नहीं होती। जैसे कि बोध प्राभृत की गाथा ... श्रुतसागरी टीका में कहा है—

श्लोक—देवा वि य णेरइया हलहरचक्की य तह य तित्थयरा।
सव्वे केसवभूमा कामा निक्कुंचिया होंति॥

अर्थ—देव, नारकी, हलधर–बलभद्र, चक्रवर्ती, ... सब नारायण और कामदेव ये दाढ़ी मूंछ से रहित होते हैं ... तीर्थंकरों के भी दाढ़ी मूंछ नहीं होती।

४०. प्रश्न—तीर्थंकर पीछी कमण्डलु रखते हैं या नहीं?

उत्तर—कुछ ऋद्धियां प्राप्त हो जाने से तथा परिहार वि... संयम होने से पीछी की जरूरत नहीं होती एवं नीहार (... मूत्रादि) नहीं होने से उन्हें कमण्डलु की आवश्यकता नहीं होती।

४१. प्रश्न—तरेसठ शलाका पुरुषों में किन किन के नीहार नहीं होता?

उत्तर—बोध प्राभृत की गाथा ३२ में श्रुतसागरी टीका ... लिखा है—

श्लोक—तित्थयरा तप्पियरा हलहर चक्की य अद्धचक्की य।
देवा य भूयभूमा आहारो अत्थि णत्थि णीहारो॥३२॥

अर्थ—तीर्थंकर, उनके माता पिता, बलभद्र, चक्रवर्ती, अर्द्ध चक्रवर्ती, देव और भोगभूमियां इनके आहार तो होता है परन्तु नीहार (मलमूत्रादि का निस्सरण) नहीं होता।

४२. प्रश्न—चौबीस तीर्थंकर दीक्षा लेकर मुनि (छद्मस्थ) अवस्था में कितने दिन रहे?

उत्तर—भगवान् ऋषभनाथ को मुनि दीक्षा लेने के अनन्तर ००० वर्ष तक केवल ज्ञान नहीं हुआ यानि तबतक वे छद्मस्थ । अजितनाथ १२ वर्ष, संभवनाथ १४ वर्ष, अभिनन्दननाथ १८ , सुमतिनाथ २० वर्ष, पद्मप्रभ ६ मास, सुपार्श्वनाथ ६ वर्ष, द्रप्रभ ३ मास, पुष्पदन्त ४ वर्ष, शीतलनाथ ३ वर्ष, श्रेयांसनाथ वर्ष, वासुपूज्य १ वर्ष, विमलनाथ ३ वर्ष, अनन्तनाथ २ वर्ष, नाथ १ वर्ष, शान्तिनाथ १३ वर्ष, कुन्थुनाथ १६ वर्ष, अरनाथ वर्ष, मल्लिनाथ ६ दिन, मुनिसुव्रतनाथ ११ मास, नमिनाथ ६ स, नेमिनाथ ५६ दिन, पार्श्वनाथ ४ मास और महावीर १२ तक छद्मस्थ अवस्था में रहे। इतने समय तक उनको केवलज्ञान पन्न नहीं हुआ।

४३. प्रश्न—तीर्थङ्कर प्रभु को मुनि अवस्था में जो गृहस्थ ली दफा आहार देता है, सो उसी भव में मोक्ष जाता है क्या ?

उत्तर—उसी भव का नियम नाहिं, तीसरे भव का नियम । वड़े हरिवंश पुराण में गाथा ६१ में लिखा है।

४४. प्रश्न—अरहंत भगवान ने कौन कौनसी ६३ कर्म कृतियों को नष्ट किया है ?

उत्तर—६३ प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—ज्ञानावरण की ५, र्शनावरण की ६, मोहनीय की २८, अंतराय की ५, मनुष्यायु को ोड़कर शेष ३ आयु और ३ आयु आदि से सम्बन्धित नाम कर्म ी १३।

४५. प्रश्न—भगवान शब्द की क्या परिभाषा है ?

उत्तर—भग (ज्ञान) जिसमें पूर्णरूप में पाया जावे उन्हें भगवान कहते हैं।

४६. प्रश्न—भगवान् एक ही तरह के होते हैं या अनेक

उत्तर—भगवान् अनेक होते हैं किन्तु एक ही तरह के वीतरागी और सर्वज्ञ होते हैं। नामधारी भगवान् अनेक त हो सकते हैं।

४७. प्रश्न—देवता और भगवान् में क्या अन्तर है?

उत्तर—देवता हमारी तरह संसारी होते हैं, भगवान् और मोक्षगामी एवं पूर्ण सुखी होते हैं। वे देवाधिदेव हैं।

४८. प्रश्न—आज भगवान् साकार कैसे हो सकता है?

उत्तर—विदेह क्षेत्र में अरहंत परमात्मा बनकर।

४९. प्रश्न—परमेश्वर का मुख्य निवास कहाँ है?

उत्तर—स्वक्षेत्र की अपेक्षा आत्मा में, परक्षेत्र की अ लोकाकाश में।

५०. प्रश्न—तीर्थङ्कर का सही अर्थ क्या है?

उत्तर—जो धर्म का तीर्थ चलाते हैं। देखो तिलोय पण्ण १–५१०।

५१. प्रश्न—तीर्थंकर और भगवान् में क्या अन्तर है?

उत्तर—जो कर्मों को नाश कर वीतराग सर्वज्ञ बनता है भगवान है। तीर्थंकर भगवान बन जाते हैं। बिना तीर्थंकर पद भी भगवान् बन सकते हैं।

५२. प्रश्न—केवली भगवान् और तीर्थंकर में क्या अन्त है?

उत्तर—सामान्य केवली का समवसरण नहीं होता है तीर्थं का समवसरण होता है।

५३. प्रश्न—तीर्थंकर और सामान्य केवली एक दूसरे मिलते हैं या नहीं?

उत्तर—तीर्थङ्कर एक दूसरे से नहीं मिलते। सामान्य केवली मिलते हैं और तीर्थङ्कर के साथ में भी रहते हैं। आपस में भी साथ रहते हैं।

५४. प्रश्न—अरहंत और परमेष्ठी में क्या अन्तर है?

उत्तर—जो स्वपद (आत्मा) में रहते हों उन्हें पंच परमेष्ठी कहते हैं। उनमें अरहंत भी एक वीतरागी, सर्वज्ञ प्रथम परमेष्ठी हैं।

५५. प्रश्न—अरिहंत भगवान के मन होता है, या नहीं?

उत्तर—अरिहंत भगवान भाव मन का उपयोग नहीं करते हैं, उनके द्रव्य मन ही होता है भाव मन नहीं।

५६. प्रश्न—जीवन मुक्त परमात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर—अरिहंत परमात्मा को। क्योंकि उनके द्रव्यप्राणों का जीवन भी है और मुक्ति के दरवाजे पर भी पहुँच गये हैं।

५७. प्रश्न—अन्तकृत केवली किसे कहते हैं?

उत्तर—जिन्होंने संसार का अंत कर दिया है उन्हें अन्तकृत केवली कहते हैं।

नोट १—अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के तीर्थकाल में १. नमि, २. मतङ्ग, ३. सोमिल, ४. रामपुत्र, ५. सुदर्शन, ६. यमलिक, ७. वलिक, ८. विष्कम्बिल (किष्कम्बल) ९. पालम्बष्ट, १०. पुत्र, इन दश मुनीश्वरों ने तीव्र उपसर्ग सहन किया। (भग. आ. पत्र २०३ ॥)

नोट २—जिन्हें घोर उपसर्ग सहन करते हुये कैवल्यज्ञान प्राप्त होता है और तुरन्त ही अन्तर्मुहूर्त में मुक्ति पद मिल जाता है उन कैवल्यज्ञानियों को "अन्तः कृतकेवली" कहते हैं।

५८. प्रश्न—मूक केवली किसे कहते हैं?

उत्तर—जो केवलज्ञानी होकर भी कभी भी नहीं बोलते।

५९. प्रश्न—भगवान को केवलज्ञान होने पर शरीर ५०० धनुष ऊपर चला जाता है, तब समवशरण की रचना कहां होती होगी ?

उत्तर—देवोपनीत समवसरण भी इतना ही ऊंचा बनता है उसमें सिंहासन से चार अंगुल ऊपर भगवान् विराजमान रहते हैं। २० हजार सीढ़ियां समवसरण में होती हैं जिन्हें सभी लोग अन्तर्मुहूर्त में अतिशय के कारण पार कर लेते हैं।

६०. प्रश्न—समोसरण में भगवान का मुख किस ओर होता है ?

उत्तर—होता पूर्व की ओर है, दिखता चारों ओर है।

६१. प्रश्न—भगवान के समवसरण में आठ प्रातिहार्य कौनसे होते हैं ?

उत्तर—आठ प्रातिहार्य—अशोक वृक्ष, देवकृत पुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, चामर (चंवर), सिंहासन, भामण्डल, दुन्दुभि वाद्य और छत्रत्रय ये जिनेन्द्रदेव के आठ प्रातिहार्य होते हैं।

६२. प्रश्न—तीर्थंकरके केवलज्ञान के १० अतिशय कौनसे हैं ?

उत्तर—निम्न प्रकार हैं--१. तीर्थंकर को केवलज्ञान हो जाने पर उनके चारों ओर १००-१०० योजन (४००-४०० कोस) तक सुकाल होता है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अकाल नहीं होता। २. आकाश में (पृथ्वी से ऊपर अधर) चलना। ३. एक मुख होते हुए भी उसका चारों ओर दिखाई देना। ४. उनके शरीर में स्वेद नहीं रहता, न उनके शरीर से किसी जीव का घात होता है। ५. उन पर किसी भी देव, मनुष्य, पशु तथा अचेतन पदार्थ द्वारा उपसर्ग नहीं होता। ६. भूख नहीं लगती, अतः भोजन नहीं करते। ७. समस्त ज्ञान विद्याओं का प्राप्त होना। ८. नाखून और बालों का न बढ़ना। ९. नेत्र आधे खुले रहना पलकें न झपकना। १० शरीर की छाया न पड़ना।

६३. प्रश्न—तीर्थंकर के केवलज्ञान उत्पन्न होने पर देवकृत दह अतिशय कौन से होते हैं ?

उत्तर—निम्न प्रकार होते हैं—१. सकलार्द्ध मागधी भाषा, . सब जीवों में मैत्रीभाव, ३. सब ऋतु के फल फूल फलना, ४. रण समान भूमि, ५. कंटकरहित भूमि, ६. मंद सुगंध पवन, ७. आनंद होना, ८. गंधोदकवृष्टि, ९. पैरों के नीचे कमलरचना, ०. सर्वधान्य निष्पत्ति, ११. दसों दिशाओं का निर्मल होना, १२. वों के द्वारा आह्वानन शब्द, १३. धर्मचक्र का आगे चलना, १४. ष्ट मंगलद्रव्यों का आगे चलना।

६४. प्रश्न—भगवान के साथ देवों कृत चौदह अतिशयों में ौदहवां अतिशय के अष्ट मंगल द्रव्य रहते हैं, उनके क्या नाम हैं ?

दोहा—छत्र चमर घंटा ध्वजा, झारी पंखा नव्य।
स्वस्तिक दर्पण संग रहे जिन वसुमंगल द्रव्य॥

अर्थ--१. सफेद छत्र, २. चमर, ३. घंटा, ४. ध्वजा, ५. वर्ण मय झारो, ६. पंखा, ७. स्वस्तिक और ८. दर्पण ये आठ ंगल द्रव्य हैं जो जिन भगवान् के साथ रहते हैं। प्रत्येक मंगल द्रव्य क सौ आठ, एक सौ आठ रहते हैं।

६५. प्रश्न—केवलज्ञानी के शरीर में निगोदिया जीव होते क्या ?

उत्तर—नहीं–केवलज्ञानी का परमौदारिक शरीर होता है, अतः उसके आश्रय से निगोदिया जीव नहीं होते। यद्यपि आकाश के उसी क्षेत्र में होते हैं—क्योंकि लोक में सर्वत्र निगोदिया जीव भरे पड़े हैं, तथापि वे जीव परमौदारिक शरीर के आश्रित नहीं हैं। केवली का परमौदारिक शरीर, मुनि का आहारक शरीर, देवों का तथा नारकियों का वैक्रियक शरीर तथा पृथ्वीकाय, अप्काय,

वायुकाय और तेजोकाय इन स्थानों के आश्रय से निगोदिया नहीं होते।

६६. प्रश्न—भगवान् के समवसरण में चौसठ चमर वाले कौन-कौन से इन्द्र होते हैं ?

उत्तर—चौसठ चमर करने वाले इन्द्र निम्न प्रकार होते भवनवासियों के इन्द्र २०, व्यन्तर देवों के इन्द्र १६, कल्पवासि देवों के इन्द्र २४ और ज्योतिषियों के देवेन्द्र चन्द्रमा और सूर्य और उपेन्द्र के हिसाव से चार इस तरह कुल चौसठ होते हैं।

६७. प्रश्न--यदि भगवान महावीर की जनभाषा थी फिर गणधर की आवश्यकता क्यों पड़ती है ?

उत्तर—अरहंत भगवान की दिव्यध्वनि वीजाक्षर संक्षिप्त शब्द और अर्थ गम्भीरता लिए होती है। उसका स्प करण गणधर करते हैं इस प्रकार धवला भाग ९ पृष्ठ १२ कहा है। अर्थात् उन वीजाक्षरों का अर्थ और भाव, बुद्धि आदि ऋद्धियों के धारी गणधर ही खुलासा करते हैं।

६८. प्रश्न—गणधर के अभाव में भगवान महावीर स्वा को ६६ दिन तक दिव्यध्वनि नहीं खिरी। तीर्थंकर को पराधीनता क्यों ?

उत्तर—जयधवला में कहा है—उससे पूर्व दिव्यध्वनि खिरने का योग्यता ही नहीं थी। जब दिव्यध्वनि के खिरने का काल आया तब गणधर के योग पूर्वक केवलज्ञान उसके खि में निमित्त हुआ, इसलिये पराधीनता का प्रश्न ही नहीं उठता।

६९. प्रश्न--अरहंत भगवान के मूलगुण कितने हैं ?

उत्तर—[illegible] के दश अतिशय और देवकृत १४ अति [illegible] है। अनंत चतुष्टय ही उनके मूलगुण (आत्मगु

उत्तर—शुद्ध कार्य के लिये निमित्त भी शुद्ध ही मिलते हैं। जैसे सम्यग्दर्शन के लिए सम्यग्ज्ञानी गुरु का उपदेश ही निमित्त बनता है। इसलिए शुद्ध आत्मा के निमित्त से वाणी भी शुद्ध (सत्य) ही प्रवाहित होती है। ऐसा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है।

७४. प्रश्न—दिव्यध्वनि साक्षर होती है या निरक्षर?

उत्तर—वाणी निरक्षरी होती है किन्तु उसे मागधदेव इस प्रकार बना देते हैं कि सब अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते हैं।

७५. प्रश्न—दिव्यध्वनि किस समय खिरती है?

उत्तर—तीर्थङ्कर पुण्यप्रकृति व नामकर्म के उदय से जीवों के साता कर्म के उदय से उनका कल्याण होने के तीर्थङ्करों की सहज स्वाभाविक दिव्य ध्वनि पूर्वाह्न, म अपराह्न और अर्द्धरात्रि की छह छह घटिकाओं में खिरत केवली भगवान के मुखसे प्रगट होने वाली मेघकी गर्जना ध्वनि। (एक योजन ४ कोस तक सुनाई देने वाली) हो यह ध्वनि निकलते समय एक प्रकार की ध्वनि में ॐ रूप परन्तु देव मानव व पशु सबकी भाषारूप हो जाती है, स अपनी भाषा में सुनते हैं। जैसे बादलों का पानी एक रू परन्तु वृक्षों के भेद से अनेक रस रूप हो जाता है।

इस दिव्यध्वनि में अठारह महाभाषा, सात सौ छो तथा संज्ञी जीवों की और भी अक्षरात्मक (अक्षरों से लि अनक्षरात्मक भाषाएं हैं उन सभी भाषाओं में तालु, कण्ठ को बिना हिलाये चलाये भगवान की वाणी भ लिये प्रगट होती है तथा अस्खलित (स्पष्ट) अ छह द्रव्य व उनके स्वभाव का, पांच अस्तिकाय, पदार्थ, प्रमाण, नय, निक्षेप आदि, ११ अंग १४ वर्णन भगवान की दिव्य ध्वनि भव्य जीवों को

हैं और मौका पड़ने पर शेष समय में गणधर, इन्द्र तथा चक्रवर्ती के प्रश्न करने पर भी दिव्यध्वनि सात भंगमय खिरती है।

७६. प्रश्न—तीर्थङ्कर भगवान का संक्षिप्त उपदेश क्या है?

उत्तर—आत्मा की पूर्ण स्वतंत्रता जीव का सहज सिद्ध अधिकार है।

७७. प्रश्न—कौन कौन सी गति के जीव भगवान का उपदेश सुनते हैं?

उत्तर—मनुष्य, पंचेन्द्रिय तिर्यंच (पशु, पक्षी) और देव।

७८. प्रश्न—किन केवलीभगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिरती है?

उत्तर—मूक केवली और अंतःकृत केवली की वाणी नहीं खिरती है। बाकी पांच तरह के केवली परमात्मा की वाणी खिरती है। लाटी सं० १ में इसका प्रमाण है।

७९. प्रश्न—यदि समवसरण में अन्य केवली और श्रुत केवली आदि का भी उपदेश होता है तो समवसरण के किस स्थान पर?

उत्तर—भवनभूमि नामक सप्तम भूमि से आगे एक हजार स्तम्भों पर खड़े हुए महोदय मण्डप में श्रुतदेवता की मूर्ति होती है। उनके दाहिने भाग में श्रुतकेवली श्रुत का उपदेश देते हैं। महोदय मण्डप से आधे विस्तार वाले चार परिवार मण्डप और होते हैं। उनके बीच के स्थानों में केवली भगवान विराजमान रहते हैं।

८०. प्रश्न—अरहंत देव "पर" को व्यवहार से जानते हैं और व्यवहार को असत्यार्थ कहा जाता है, तब व्यवहार को असत्यार्थ बताने वालों की दृष्टि में सर्वज्ञ कहां है? वह तो आत्मज्ञ ही रहा?

उत्तर—श्री अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है—

तज्जयति परंज्योतिः, समं समस्तैरनंतपर्यायैः ।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिकायत्र ।।पु.सि. १।।

इस पुरुषार्थ सि० के मंगलाचरण में केवलज्ञान को नमस्कार करते हुए आचार्य ने कहा है—जिस ज्ञान में विश्व के समस्त पदार्थ अपने अनन्तगुण और अनन्तपर्याय सहित दर्पणकी तरह झलकते हैं वह केवलज्ञान ज्योति जयवंत रहो। "प्रतिफलति" शब्द विशेष द्रष्टव्य है। यहाँ यह नहीं कहा कि वे जानते हैं किन्तु उनके निर्मल ज्ञान में पदार्थ प्रतिबिंबित होते हैं। क्योंकि ज्ञान का "स्वपरप्रकाशक" स्वभाव है। अतएव परपदार्थों को अपने गुणों की तरह तन्मय होकर नहीं जानते हैं। जानने में उपयोग जुटाना पड़ता है। अतएव सर्वज्ञ परपदार्थ को जानते हैं यह व्यवहार से ही कहा जाता है। किन्तु सर्वज्ञ का ज्ञान स्वपर प्रकाशक है और वस्तु में प्रमेयत्व गुण है। इसलिये पदार्थ उनके ज्ञान में प्रतिबिंबित होते हैं। अतः उनको सर्वज्ञ कहा जाता है।

८१. प्रश्न—केवली भगवान के ११ परिषह सिद्धान्त में कही गई है। तब क्या केवली भगवान को भी परिषह सहना पड़ता है?

उत्तर—केवली भगवान के ग्यारह परिषह उपचार से कही गई हैं। राजवार्तिक में अकलंकदेव ने कहा भी है—

"क्षुधादिवेदना परिषहाभावेऽपि वेदनीय कर्मोदय द्रव्य—
परिषह सद्भावात् एकादशजिने संतीति उपचारो युक्तः ।।पृ.३३८।।

क्षुधा, तृषादि की वेदनारूप भाव परिषह के अभाव होते हुए भी वेदनीय कर्मोदय द्रव्य रूप कारणात्मक परिषह के सद्भाव होने से जिन-भगवान में ग्यारह परिषह होती हैं ऐसा उपचार किया जाता है।

८२. **प्रश्न**—तीर्थङ्कर किसका ध्यान करते हैं ?
उत्तर—अपनी आत्मा का।

८३. **प्रश्न**—अरहंत भगवान पूर्ण सुखी क्यों है ?
उत्तर—क्योंकि दुख के कारणभूत मोह राग द्वेष नष्ट हो चुके हैं। राग द्वेष मोह के कारण ही जीव दुखी होता है।

८४. **प्रश्न**—अरिहन्त और सिद्धके सुख में क्या अन्तर है ? यदि अन्तर नहीं है तो आठों कर्मों को उसका प्रतिपक्षी कैसे माना जा सकता है ?

उत्तर—सुख अनुजीवी गुण है, इसलिये उसका घात करने वाले मुख्यरूप से चार घातिकर्म स्वीकार किये गये हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर अरिहन्तों और सिद्धों के सुख में अणुमात्र भी अन्तर नहीं है। किन्तु आठों "कर्मों का विपाक दुःखमय है" इस तथ्य को ध्यान में रखकर आठों कर्म सुख के प्रतिवन्धक कहे गये हैं। आशय एक ही है।

८५. **प्रश्न**—औदारिक शरीरधारी जीव केवलज्ञान होने पर विना कवलाहार के अनेक वर्षों तक जीवित कैसे रह सकते हैं ?
उत्तर—शरीर की रचना आहार वर्गणाओं से होती है। केवलज्ञान होने पर ऐसे पुण्य परमाणुओं का ग्रहण होता है, जिससे विना भोजन के भी शरीर की स्थिति वनी रहती है।

८६. **प्रश्न**—केवलज्ञान होने पर भगवान को भूख क्यों नहीं लगती है ?

उत्तर—उनकी शारीरिक शक्ति व्यर्थ व्यय नहीं होती है तथा पुण्य परमाणुओं का ग्रहण होता है जिससे भूख नहीं लगती। देवों को हजारों वर्ष भूख नहीं लगती है।

८७. **प्रश्न**—क्या सभी गणधर मोक्ष जाते हैं ?

उत्तर—हां सभी गणधर नियम से मोक्ष जाते हैं।

८८. प्रश्न—भगवान महावीर ने सम्पूर्ण भारतवर्ष में विहार किया था, इसलिये विहार के बीच में नदियां और समुद्र भी पड़े होंगे। जबकि मुनि जल में चलते नहीं हैं फिर तीर्थंकर का जल देश में विहार कैसे हो सकता है ?

उत्तर—केवलज्ञान होने पर सभी अरहंतों का गमन आकाश में होता है। उनका शरीर ५०० धनुष ऊँचा अन्तरिक्ष में ऊपर रहता है ऐसा अतिशय उनको प्राप्त हो जाता है। केवलज्ञान के दश अतिशयों में कहा भी है—"गगन गमन मुख चार।"

८९. प्रश्न—चौबीस तीर्थंकर कौन कौन से आसन से मुक्त हुये ?

उत्तर—भगवान ऋषभनाथ, वासुपूज्य और नेमिनाथ की मुक्ति पर्यंङ्क आसन (पद्मासन) से हुई। शेष समस्त तीर्थंकरों की मुक्ति खड्गासन (खड़े आसन) से प्राप्त हुई।

९०. प्रश्न—श्री आदिनाथ तीर्थंकर और अन्तिम श्री महावीर तीर्थंकर कब मुक्त हुये ?

उत्तर—तीसरे (सुषमा दुःषमा) में ३ वर्ष ८ मास १५ दिन शेष रहने पर श्री ऋषभनाथ मुक्त हुए। चौथे काल (दुःषमा सुषमा) में तीन वर्ष ८ मास १५ दिन शेष रहने पर भगवान महावीर मुक्त हुए।

९१. प्रश्न—तीर्थंकर आदि के **पंचम** कल्याण को निर्वाण क्यों कहते हैं ? मरण क्यों नहीं कहते ?

उत्तर—मरण उसे कहते हैं, जिसके बाद जन्म हो, तीर्थंकर आदि का अब जन्म नहीं होगा, इसलिये उसे निर्वाण कहते हैं।

उत्तर—पुष्पदन्त से लेकर सात तीर्थंकरों के तीर्थ में क्रमशः पाव पल्य, आधा पल्य, पौन पल्य, एक पल्य, पौन आधा पल्य और पाव पल्य प्रमाण धर्म का विच्छेद रहा। समय कोई भी मुनि दीक्षा नहीं लेता है, यही धर्म का विच्छेद क्योंकि धर्मतीर्थ मुनिजन के द्वारा ही चलता है। इतने लंबे तक मुनिगण के न होने से धर्म के साथ होने वाले आचार भी रहता है।—तिलोय प० भाग १-१२७८-८०।

९६. प्रश्न—भगवान पार्श्वनाथ को चिन्तामणि पार्श्व क्यों कहते हैं?

उत्तर—यदि पार्श्वनाथ के मार्ग पर चलें तो हमें सब प्राप्त हो सकता है। जैसे चिन्तामणि के चिन्तन से सब कुछ हो सकता है।

९७. प्रश्न—भगवान नेमिनाथ ने विवाह क्यों नहीं कराया

उत्तर—जब गृहस्थी का प्रथम प्रवेश ही जीव हिंसा बन्धन से प्रारम्भ हो रहा है तब आगे क्या होगा? ऐसा विचार कर भगवान् संसार से विमुख हो गये।

९८. प्रश्न—मल्लिनाथ भगवान् के वैराग्य का क्या कारण था?

उत्तर—उनके पिता महाराज कुम्भ जब उनके विवाह की तैयारी कर रहे थे, उसी समय तीर्थङ्कर मल्लिनाथ सोच रहे थे, यह विवाह संसार का एक मीठा बन्धन है, पराधीनता है, स्वतन्त्रता में बाधक है यही विचार करने से उन्हें वैराग्य हो गया था।

९९. प्रश्न—बाहुबली को तीर्थङ्कर क्यों नहीं कहते हैं?

उत्तर—भरतक्षेत्र में पाँच कल्याणक के धारी एवं तीर्थङ्कर प्रकृति बांधने वाले ही तीर्थङ्कर कहलाते हैं। फिर तीर्थंकर

उत्तर—व्यवहारिक अहिंसा पालन करने के लिए ईसा ने यह उपदेश दिया था। व्यवहारिक अहिंसा पालन करने के लिए यह हम पर भी लागू होता है। भगवान महावीर ने उपदेश संसार के दुःख से छूटने का दिया है।

१०४. प्रश्न—भगवान महावीर का नारा क्या "जीवो और जीने दो" है ?

उत्तर—यह नारा तो सभी धर्मों का हो सकता है महावीर का असली नारा था—"अपना सव उत्थान करो, आत्मशांति का पान करो।"

१०५. प्रश्न—भगवान महावीर की जय का क्या अर्थ है, क्या उनकी जय अभी होना वाकी है ?

उत्तर—भगवान महावीर की जय (जीत) तो हो चुकी है। किन्तु उनकी जय का अर्थ है उनके धर्म की प्रभावना हो, यही उनके शासन की जय है।

१०६. प्रश्न—चरम शरीरी का क्या अर्थ है ?

उत्तर—अन्तिम शरीर, जिसके वाद शरीर नहीं मिलता अर्थात् उसी भव से मोक्ष जाने वाले।

१०७. प्रश्न—क्या चरम शरीरी, उत्तम संहनन के धारी ही होते हैं ?

उत्तर—प्रारम्भ के तीन संहनन उत्तम कहलाते हैं। उत्तम ध्यान तीनों संहनन वालों के होता है किन्तु मोक्ष वज्रवृषभनाराच प्रथम संहनन का धारी ही प्राप्त करता है।—राजवार्तिक-अ० ६। २३। पृ० ६२५।

१०८. प्रश्न—सुकौशल और सुकुमाल मुनि का वज्रवृषभनाराच संहनन होने पर भी उनके शरीर का भक्षण हिंस्र जीवों

उत्तर—विदेह क्षेत्र में जाने के कारण तथा ८४ पाहुड़ की रचना एवं चारों अनुयोगों के अधिकारी होने से वे कलि-काल सर्वज्ञ भी कहलाते थे। श्रुत केवलियों ने शास्त्र रचना नहीं की है। इसने कुन्दकुन्दाचार्य को प्रमुखता दी है।

११२. प्रश्न—श्री कुन्दकुन्दाचार्य विदेहक्षेत्र में कितने दिन रहे ?

उत्तर—जब विदेह क्षेत्र में दिन होता है तो भरत क्षेत्र में रात्रि होती है, ऐसा आगम कहता है। इस पंचम दुखमा काल में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य को देव विदेहक्षेत्र में सीमंधर तीर्थंकर के समोशरण में ले गया था, वहाँ आचार्य महाराज आठ दिन बराबर ठहर कर अपनी शंकाओं का निवारण करते रहे, वहाँ दिन के होते हुए भरतक्षेत्र में रात्रि का होना स्वाभाविक था और वहां रात्रि हो जाती तो रात्रि में वहां आहार लेना नियमानुसार विरुद्ध था जिसके कारण आचार्य महाराज आठ दिन निराहार रहे। नियम को निर्दोष पालन करना भावों की महानता पर ही निर्भर है।

इसके बाद आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने भगवान के दर्शन व दिव्य-ध्वनि से अपनी आत्मा को शुद्ध किया और बाद में वहां से आकर समयसारादि की रचना की।

११३. प्रश्न—विदेह क्षेत्र कहाँ है ?

उत्तर—जाने हुये छह महाद्वीपों से भी असंख्य कोसों दूर, जम्बूद्वीप के बीचोंबीच। जहाँ से हमेशा जीव मोक्ष जाते रहते हैं।

विदेह में दुर्भिक्ष नहीं होता। १. अतिवृष्टि, २. अनावृष्टि, ३. मूषक, ४. टिड्डी, ५. सूखा, ६. स्वराष्ट्र और ७. परराष्ट्र इस प्रकार की ईति नहीं होती है। महामारी आदि प्राणी-समूह के नाशक रोग सर्वथा नहीं होते। जिनेन्द्रदेव के सिवा अन्य देव (कुदेव) और जिन लिङ्ग के सिवा अन्य लिंगी (कुलिंगी) और जिनोक्त मत

तीसरा अधिकार

१. प्रश्न—जैन धर्म का आत्मा क्या है और इसके संस्थापक कौन हैं ?

उत्तर—जैन शास्त्रानुसार धर्म अनादि अनंत है। [illegible] में तीर्थंकर होते रहते हैं। इस युग में कर्म भूमि के [illegible] में भगवान ऋषभदेव ने इस अनादि धर्म का प्रचार आरंभ किया था।

२. प्रश्न—जैनधर्म का क्या अर्थ है ?

उत्तर—जिसने मोह राग द्वेष कर्मों को जीत लिया है वे जिन हैं और जिस साधन के द्वारा वे कर्म जीते जायें उसका नाम जैनध[र्म] है।

३. प्रश्न—जैनधर्म क्या कहता है ?

उत्तर—तुम्हारी आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है।

४. प्रश्न—जैनधर्म की विशेषता क्या है ?

उत्तर—प्रत्येक आत्मा अपने पुरुषार्थ से आत्मा से परमा[त्मा] बन सकता है। अहिंसा ही परम धर्म है। जैनधर्म वस्तु स्वरूप [को] बतलाने वाला विश्वधर्म है। जैनधर्म-बाड़े या वेष का धर्म नहीं है। जैनधर्म-अनादि अनंत है, निश्चित काल के लिए प्रवर्तने वा[ला] धर्म नहीं है। जैनधर्म-अनेकान्तवादी है। एकान्तवादी नहीं है। जैनधर्म अनुभववादी है विकल्पवादी नहीं है। जैनधर्म-स्वभाववा[दी] है, विभाववादी नहीं है। जैनधर्म-पुरुषार्थवादी है, कर्माधीनवा[दी] नहीं है। जैनधर्म वीतरागवादी है, रागवादी नहीं है। जैनध[र्म] स्वतंत्रवादी है, परतंत्रवादी नहीं है।

५. प्रश्न—जैनधर्म सर्वश्रेष्ठ क्यों है ?

उत्तर—क्योंकि यही प्रत्येक आत्मा को परमात्मा बना[कर] पूर्ण सुखी बना देता है। सब प्राणियों में अहिंसा और अनेकांत [द्वारा] अभय और सुख शांति का स्थापन करता है।

सका, फिर नाम बदलने से क्या लाभ होगा ? प्रभावशाली प्राचीन आचार्य इन्द्रनन्दि, वज्रनन्दि, लोहाचार्य और जिनसेनाचार्य ने गांव के गांव जैनधर्म में दीक्षित कर दिये थे किन्तु धर्म का नाम बदल कर ऐसा नहीं किया था। यह तो वीतराग धर्म है जिसे सच्चे हृदय से आत्म कल्याण करना हो वही इसकी शरण में स्वयं आये। हम मायाचारी (अपवित्रता) का उपदेश दें यह तो धर्म विरुद्ध कार्य होगा। अतः जैनधर्म के नाम बदलने का सुझाव शोभास्पद नहीं है।

१०. **प्रश्न**—तीर्थंकर कौन होते हैं ?

उत्तर—जो सम्यग्दृष्टि जीव विश्व कल्याण की भावना करते हैं वे तीर्थंकर बनते हैं। तीर्थंकर संसारी से मुक्त बनते हैं, अवतारवाद में परमात्मा संसार में लौटकर आता है। जैनधर्म अवतारवाद नहीं मानता है।

११. **प्रश्न**—जब जैनधर्म प्राचीन काल से है तो इसका प्रभाव विदेशों में क्यों नहीं है ?

उत्तर—चूंकि जैनधर्मके प्रभावशाली प्रचारक विदेशों में नहीं पहुँचे, इसलिए इसका प्रभाव विदेशों में नहीं। पूर्वकाल में इसका प्रभाव रहा है। जिसके अनेक प्रमाण हैं।

१२. **प्रश्न**—क्या विदेश में भी जैन मन्दिर और जैन परिवार पाये जाते हैं ?

उत्तर—अकेले अमेरिका में ३०० जैन परिवार हैं। अन्यत्र तो हजारों हैं। मन्दिर मुम्बासा (अफ्रीका) में है।

१३. **प्रश्न**—क्या जैनधर्म विदेशों में भी प्रचलित है ?

उत्तर—दक्षिण अफ्रीका में जैन समाज अधिक है अतः वहां उन्हीं में धर्म श्रद्धा है। बाकी अमेरिका आदि देशों में प्रवासी जैनों में ही प्रचार है।

१४. **प्रश्न**—क्या जैनधर्म जातिवाद को महत्व देता है ?

[illegible]

[illegible]

[illegible]

२१. प्रश्न— [illegible] जैन धर्म रहेगा

उत्तर— पंचम काल के अंत [illegible] साढ़े आठ मास बाकी तक जैनधर्म रहेगा। इसके पश्चात् धर्म, राजा और अग्नि का अभाव हो जायगा।

२२. प्रश्न— क्या एक दिन दुनिया का नाश होगा?

उत्तर— वस्तु का नाश कभी नहीं होता है। उसकी प[illegible] का प्रलय के समय नाश हो जायगा।

२३. प्रश्न— छठे काल के अन्त में काल परिवर्तन के स[illegible] की क्या व्यवस्था है?

उत्तर—अवसर्पिणी के छठे काल में ४९ दिन शेष रहने [illegible] विविध प्रकार की वर्षा, आंधी होकर पुरातन व्यवस्था समाप्त [illegible] जाती है। उस समय बहुत से तिर्यंच, मनुष्य विजयार्द्ध पर्वत [illegible] गुफाओं आदि का आश्रय लेकर अपनी रक्षा करते हैं। वहां मह[illegible] प्रलय न पड़ने से वे जीव बच जाते हैं। इस प्रकार श्रावण [illegible] प्रतिपदा से नये युग का प्रारम्भ होने पर ४९ दिन तक अमृत आ[illegible] की वर्षा होकर भूमि प्राणियों के संचार योग्य हो जाती है [illegible] इसलिए भाद्रपद शुक्ला पंचमी से इस भूमि पर पुनः जीवों [illegible] संचार होने लगता है। यह युग-परिवर्तन के समय की व्यवस्था है

९. प्रश्न—धर्म कहाँ है ?

उत्तर—शब्दों में धर्म नहीं, शब्द के भावों की अनुभूति में धर्म है।

१०. प्रश्न—धर्म और कर्म में क्या अन्तर है ?

तर—सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय को धर्म कहते हैं और ...ादि को भावकर्म कहते हैं। इसी से द्रव्यकर्म (ज्ञाना-...आठ) व नोकर्म (शरीरादि) का बन्ध होता है।

... प्रश्न—धर्म और दर्शन में क्या अन्तर है?

...तर—आत्मा के ज्ञान स्वभाव को धर्म कहते हैं और उस ...तलाने वाले सिद्धान्त को दर्शन कहते हैं।

...२. प्रश्न—धर्म और ईश्वर में क्या अन्तर है?

...तर—धर्म की पूर्णता का नाम ही ईश्वर है।

... प्रश्न—जीवन में असली धर्म क्या है?

...तर—आत्मा में छिपी हुई अनंत शक्ति की पहिचान कर ...प्रयोग करना।

... प्रश्न—मानव की मनशुद्धि में धर्म किस प्रकार का कार्य ...?

...तर—धर्म की शरण में जाकर जब मन आत्मा के गुणों ... झांकने लगता है तो उसे विषय कषाय की कीमत नहीं ...यही मन शुद्धि है।

... प्रश्न—धर्म बड़ा या धर्मात्मा?

...तर—धर्मात्मा के बिना धर्म कोई अलग वस्तु नहीं है। ...र्मात्मा की कीमत है। अपनी अपनी जगह दोनों बड़े हैं।

... प्रश्न—धर्म और अधर्म किसके होता है?

...तर—सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा है। वह वीतराग परणति को ...कर उस पर चलता है। मिथ्यादृष्टि जीव राग (शुभाशुभ-...) धर्म मानता है जबकि अमृतचन्द्राचार्य ने राग को हिंसा

में बसने करि, तथा परमेश्वर के नाम जाप्यादिक करि नाहीं
है। धर्म तो आत्मा का स्वभाव है जो पर में आत्म बुद्धि छोड़
ज्ञाता दृष्टा रूप स्वभाव का श्रद्धान अनुभव तथा ज्ञायक स्व
में ही प्रवर्तन रूप जो आचरण सो धर्म है।"

४. प्रश्न—धर्म का मर्म क्या है ?

उत्तर—आत्मा अपने स्वभाव-सामर्थ्य से पूर्ण है और
अत्यन्त भिन्न है-ऐसी स्व-पर की भिन्नता को जानकर स्वद्र
अनुभव से आत्मा शुद्धता को प्राप्त करता है, यही धर्म का मर्

५. प्रश्न—धर्म क्या वस्तु है ?

उत्तर—आत्मा के ज्ञान दर्शन स्वभाव को पहिचान
उसकी श्रद्धा ज्ञान आचरण करना।

६. प्रश्न—धर्म की परिभाषा क्या है ?

उत्तर—आत्मस्वभाव की स्थिरता।

७. प्रश्न—धर्म का सरल अर्थ क्या है ?

उत्तर—आत्मा के स्वभाव को समझकर उसमें सुख की
करना धर्म है। बाहर सुख मानना अधर्म है।

८. प्रश्न—"वत्थु सहावो धम्मो" का क्या अर्थ है ?

उत्तर—प्रत्येक वस्तु का जो स्वभाव है, वह उसका धर्म
जैसे आत्मा का धर्म ज्ञान दर्शन है।

९. प्रश्न—धर्म किसमें है ?

उत्तर—शब्दों में धर्म नहीं, शब्दों के भावों की अनुभू
धर्म है।

१०. प्रश्न—धर्म और कर्म में क्या अन्तर है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय को धर्म कहते हैं और मिथ्यादर्शनादि को भावकर्म कहते हैं। इसी से द्रव्यकर्म (ज्ञानावरणादि आठ) व नोकर्म (शरीरादि) का बन्ध होता है।

११. प्रश्न—धर्म और दर्शन में क्या अन्तर है ?

उत्तर—आत्मा के ज्ञान स्वभाव को धर्म कहते हैं और उस धर्म को बतलाने वाले सिद्धान्त को दर्शन कहते हैं।

१२. प्रश्न—धर्म और ईश्वर में क्या अन्तर है ?

उत्तर—धर्म की पूर्णता का नाम ही ईश्वर है।

१३. प्रश्न—जीवन में असली धर्म क्या है ?

उत्तर—आत्मा में छिपी हुई अनंत शक्ति की पहिचान कर उसका सदुपयोग करना।

१४. प्रश्न—मानव की मनशुद्धि में धर्म किस प्रकार का कार्य करता है ?

उत्तर—धर्म की शरण में जाकर जब मन आत्मा के गुणों की कीमत आँकने लगता है तो उसे विषय कषाय की कीमत नहीं रहती है, यही मन शुद्धि है।

१५. प्रश्न—धर्म बड़ा या धर्मात्मा ?

उत्तर—धर्मात्मा के बिना धर्म कोई अलग वस्तु नहीं है। धर्म से धर्मात्मा की कीमत है। अपनी अपनी जगह दोनों बड़े हैं।

१६. प्रश्न—धर्म और अधर्म किसके होता है ?

उत्तर—सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा है। वह वीतराग परणति को धर्म मानकर उस पर चलता है। मिथ्यादृष्टि जीव राग (शुभाशुभभाव) को धर्म मानता है जबकि अमृतचन्द्राचार्य ने राग को हिंसा

चौथा अधिकार

१ प्रश्न—मन्दिर क्या है?

उत्तर—[illegible]।

२ प्रश्न—हमें मन्दिर क्यों जाना चाहिए?

उत्तर—आत्मा की शुद्धि के लिए [illegible] जाते हैं।

३ प्रश्न—मन्दिर में चमड़े की [illegible] पहिनना उचित है या नहीं?

उत्तर—चमड़े का जूता हिंसक भावों से बनता है इससे अशुद्ध भी होता है। अतः पहन कर नहीं जाना चाहिए। और ठीक यही है कि धार्मिक जैन को चमड़े का जूता पहिनना ही नहीं चाहिए।

४. प्रश्न—क्या मन्दिर में जाने से पाप नष्ट हो जाता है?

उत्तर—मन्दिर में जाकर पवित्र भावों से भगवान का स्मरण, दर्शन करने से पुण्य बन्ध होता है और उतनी देर पाप नष्ट हो जाता है।

५. प्रश्न—प्रतिदिन जैन मन्दिर जाने से लाभ?

उत्तर—न जाने किस समय प्रभु का (वीतरागता का) अन्तर में दर्शन हो जाय। जैसे प्रतिदिन स्नान करके शुद्ध होते हैं प्रतिदिन भोजन करते हैं वैसे ही प्रतिदिन मन्दिर जाना जरूरी है।

६. प्रश्न—हमें भगवान के दर्शन क्यों करना चाहिये?

उत्तर—जैसे असली सोने को देखकर सोने की परख आ जाती है। उसी प्रकार उनकी वीतराग छवि को देखकर अपने स्वभाव का ज्ञान हो जाता है और भावों में पवित्रता आ जाती है।

७. प्रश्न—उपासना किसकी करनी चाहिये?

उत्तर—सच्चे देव, शास्त्र, गुरु की।

८. प्रश्न—भगवान किसे कहते हैं?

उत्तर—जो विकारों का नाश करके ज्ञान को पूर्ण विकसित कर लेते हैं, वही आत्मा भगवान है।

९. प्रश्न—सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का क्या लक्षण है?

उत्तर—अरहन्त और सिद्ध परमेष्ठी सच्चे देव हैं देवगति के देवों से पृथक् दिखाने के लिए यहां 'सच्चे' विशेषण का प्रयोग है। सच्चे देव को परमात्मा, भगवान्, आप्त आदि नामों से कहा जाता है।

सच्चे देव अर्थात् आप्त की परिभाषा में समागत तीनों विशेषणों को सही रूप में जानने के लिए उनका स्वरूप जानना आवश्यक है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार के श्लोक नं० ५ का भावार्थ—

जो वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी होता है वही सच्चा देव कहलाता है किन्तु जो वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी नहीं होता वह सच्चा देव नहीं हो सकता ॥५॥

पहिला विशेषण है वीतराग उसका लक्षण--

रत्नकरण्डश्रावकाचार के श्लोक नं० ६ का भावार्थ—जो भूख, प्यास, बुढ़ापा, रोग, जन्म, मरण, भय, गर्व, राग, द्वेष, मोह, आश्चर्य, अरति, खेद, शोक, निद्रा, चिन्ता और स्वेद इन १८ दोषों से रहित होता है उसे वीतराग कहते हैं ॥६॥

सत्यार्थ (सच्चे) शास्त्र का स्वरूप—

रत्नकरण्ड श्रावकाचार के श्लोक नं० ९ का भावार्थ—

जो वीतराग देव का कहा हुआ, इन्द्रादिक से भी खंडन रहित, प्रत्यक्ष व परोक्ष आदि प्रमाणों से निर्बाध, तत्त्वों या वस्तु

१७. प्रश्न—प्रतिमा पूजन से लाभ ?

उत्तर—महाराज वज्रबाहु के सुपुत्र राजकुमार आनन्द प्रतिदिन जिनप्रतिमा की पूजन करता था। किन्तु एक दिन उसके मन में एक शंका उत्पन्न हुई कि प्रतिमा तो पाषाण की है, उसके पूजने से हमें क्या लाभ ? यह शंका उठते ही उन्होंने विपुलमति मुनि से पूछा—स्वामिन् ! इस पाषाण की प्रतिमा को पूजने से क्या लाभ ? क्योंकि वह हमें कभी कुछ दे तो सकती नहीं, अतः उससे हानि लाभ होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

करुणानिधि मुनिराज ने समझाया—वत्स ! जिस प्रकार किसी की छत्री भूल से कहीं खो जाये तो सामने आते हुए प्राणी के हाथ में छत्री देखकर हमें अपनी छत्री का स्मरण आ जाता है। इसी प्रकार प्रतिमा की अर्न्तदृष्टि और वीतरागता को देखकर अपनी बहिर्मुखदृष्टि को मोड़कर अर्न्तदृष्टि बनने की शिक्षा मिलती है, यही लाभ है। राजकुमार अपना समाधान पा चुका था।

१८. प्रश्न—मन्दिर जाते समय घंटा क्यों बजाते हैं ?

उत्तर—घंटा भक्ति प्रमोद का प्रतीक है।

१९. प्रश्न—रात को मन्दिर में घण्टा क्यों नहीं बजाते ?

उत्तर—अभिषेक के समय ही घण्टा बजाया जाता है [illegible] रात [illegible] को अभिषेक होता नहीं अतः घण्टा नहीं बजाया जाता है।

२०. प्रश्न—दर्शन की क्या विधि है ?

उत्तर—तीन बार निःसहि निःसहि कहकर णमोकार [illegible] मंगल पढ़कर नमस्कार करें। तत्पश्चात् [illegible] तीन परिक्रमा दें।

२१. प्रश्न—परिक्रमा देते समय दर्शन स्तुति बोलनी [illegible]
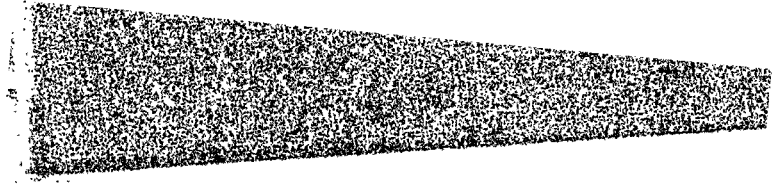
भाग्य से और आपके वचनयोग से आपकी दिव्यध्वनि है
उसको श्रवण कर भव्य जीवों का भ्रम नष्ट हो जाता है ॥३॥

तुम गुण चिंतत निजपर विवेक । प्रगटै विघटै आपद अनेक
तुम जगभूषण दूषणविमुक्त । सब महिमा युक्त विकल्पमुक्त

अर्थ—आपके गुणों का चिन्तवन करने से स्व और
भेद-विज्ञान हो जाता है, और मिथ्यात्व दशा में होने वाली
आपत्तियां (विकार) नष्ट हो जाती हैं। आप समस्त दो
रहित हो, सब विकल्पों से मुक्त हो, सर्व प्रकार की महिमा
करने वाले हो और जगत् के भूषण (सुशोभित करने
हो ॥४॥

अविरुद्ध, शुद्ध, चेतन-स्वरूप । परमात्म परम पावन अनूप
शुभ अशुभ विभावअभावकीन । स्वाभाविक परिणतिमय अछी

अर्थ—हे परमात्मा ! आप समस्त उपमाओं से रहित,
पवित्र, शुद्ध, चेतन (ज्ञान दर्शन) मय हो। आप में किसी भी
का विरोधभाव नहीं है। आपने शुभ और अशुभ दोनों प्र
विकारी-भावों का अभाव कर दिया है और स्वभाव-भाव से
हो गये हो, अतः कभी भी क्षीण दशा को प्राप्त होने वा
हो ॥५॥

अष्टादश दोष विमुक्त धीर । स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर
मुनिगणधरादि सेवत महंत । नव केवल लब्धिरमा धरंत

अर्थ—आप अठारह दोषों रहित हो और अनंत च
युक्त विराजमान हो। केवलज्ञानादि नौ प्रकार के क्षायिक-भा
धारण करने वाले होने से महान् मुनि और गणधर देवादि आ
सेवा करते हैं ॥६॥

तुम शासन सेय अमेय जीव । शिव गये जाहिं जैहैं सदीव ।
भवसागर में दुख छार वारि । तारन को और न आप टारि

अर्थ—हे जिनेश ! आपको पहिचाने विना जो दुःख मैंने पाये हैं, उन्हें आप जानते ही हैं। तिर्यंचगति, नरकगति, मनुष्यगति और देवगति में उत्पन्न होकर मैंने अनन्त वार मरण किया है ॥११॥

अव काललब्धि बलतैं दयाल। तुम दर्शन पाय भयो खुशाल॥
मन शांत भयो मिटि सकल द्वंद। चाख्यो स्वातम-रस दुखनिकंद॥१२॥

अर्थ—अव काललब्धि के आने पर आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं, इससे मुझे वहुत ही प्रसन्नता है। मेरा अन्तर्द्वन्द समाप्त हो गया है और मेरा मन शान्त हो गया है और मैंने दुःखों को नाश करने वाली आत्मानुभूति को प्राप्त कर लिया है ॥१२॥

तातैं अव ऐसी करहु नाथ। बिछुरै न कभी तुव चरण साथ॥
तुम गुणगण को नहि छेव देव। जग तारन को तुव विरद एव॥१३॥

अर्थ—अतः हे नाथ ! अव ऐसा करो जिससे आपके चरणों के साथ का वियोग न हो। तात्पर्य यह है कि जिस मार्ग (आचरण) द्वारा आप पूर्ण सुखी हुए हैं, मैं भी वही प्राप्त करूं। हे देव ! आपके गुणों का तो कोई अन्त नहीं है और संसार से पार उतारने का तो मानो आपका विरद ही है ॥१३॥

आतम के अहित विषय-कषाय। इनमें मेरी परिणति न जाय॥
मैं रहूँ आप में आप लीन। सो करो होउं ज्यों निजाधीन॥१४॥

अर्थ—आत्मा का अहित करने वाली पांचों इन्द्रियों के विषयों में लीनता और कषायें हैं। हे प्रभो ! मैं चाहता हूँ कि इनकी ओर मेरा झुकाव न हो। मैं तो अपने में ही लीन रहूँ, जिससे मैं पूर्ण स्वाधीन हो जाऊँ ॥१४॥

मेरे न चाह कछु और ईश। रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश॥
मुझ कारज के कारण सु आप। शिव करहु हरहु मम मोहताप॥१५॥

अर्थ—मेरे हृदय में और कोई इच्छा नहीं है, बस एक रत्नत्रय निधि ही पाना चाहता हूँ। मेरे हित रूपी कार्य के निमित्त कारण आप ही हो, मेरा मोह-ताप नष्ट होकर कल्याण हो, यही भावना है ॥१५॥

शशि शांतिकरन तपहरन हेत। स्वयमेव तथा तुम कुशल देत ॥
पीवत पीयूष ज्यों रोग जाय। त्यों तुम अनुभवतें भव नशाय ॥१६॥

अर्थ—जैसे चन्द्रमा स्वयमेव गर्मी कम करके शीतलता प्रदान करता है, उसी प्रकार आपकी स्तुति करने से स्वयमेव ही आनन्द प्राप्त होता है। जैसे अमृत के पीने से रोग चला जाता है, उसी प्रकार आपका अनुभव करने से संसार-रूपी रोग चला जाता है ॥१६॥

त्रिभुवन तिहुँ काल मँझार कोय। नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय ॥
मो उर यह निश्चय भयो आज। दुख-जलधि उतारन तुम जहाज ।१७

अर्थ—तीनों लोकों में और तीनों कालों में आपके समान सुखदाय (सन्मार्ग-दर्शक) और कोई नहीं है। ऐसा आज मुझे निश्चय हो गया है कि आपही दुःख रूपी समुद्र से पार उतारने वाले जहाज हो ॥१७॥

तुम गुणगणमणि गणपति, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूँ त्रियोग सँभार ॥१८॥

अर्थ—आपके गुणों-रूपी मणियों को गिनने में गणधर देव भी समर्थ नहीं हैं, तो फिर मैं (दौलतराम) अल्पबुद्धि उनका वर्णन किस प्रकार कर सकता हूँ। अतः मैं मन, वचन और काय को सँभाल कर आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥१८॥

२२. प्रश्न—मन्दिर में भगवान के दर्शन करने जावें तब "निःसहि" तीन बार क्यों बोलते हैं?

उत्तर—पापकर्मों के (अवगुणों के) निष्क्रमण के लिये और अंत में "आसही" तीन बार पुण्य कर्मों या गुणों के आगमन के लिये बोलते हैं।

२३. प्रश्न—अष्टांग नमस्कार में कौन से अंग झुकाना चाहिये ?

उत्तर—दोनों हाथ, दोनों पाँव, पेट, मस्तक, सीना और पीठ।

२४. प्रश्न—मन्दिर में भगवान की वेदी की तीन परिक्रमा क्यों दी जातो है ?

उत्तर—क्योंकि वे तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ हैं। मन, वचन, काय की संलग्नता और शुद्धि के लिए ३ प्रदक्षिणा दी जाती है।

२५. प्रश्न—भगवान की वेदिका की परिक्रमा देते समय वेदिका का स्पर्शकर अंगों को क्यों लगाते हैं ?

उत्तर—पंचपरमेष्ठी, जिनधर्म, जिनवाणी, जिनमन्दिर और जिनप्रतिमा ये पूज्य नव देवता कहलाते हैं। अतएव वेदीको पवित्र मानकर बहुमान करते हैं।

२६. प्रश्न—मन्दिर में भगवान के दर्शन कब तक करना चाहिये ?

उत्तर—जब तक मन मन्दिर में भगवान विराजमान न हो जावें।

२७. प्रश्न—जो सांसारिक कामना लेकर भगवान की पूजन भक्ति करता है, उससे कितना लाभ होता है ?

उत्तर—सांसारिक विभूति की कामना परिग्रह की चाह है और परिग्रह तो पाँचवां पाप है। तब पाप की इच्छा करने वाले को पुण्य बन्ध कैसे हो सकता है ? पद्मनंदि पंचविंशतिका में कहा

है—पुण्य की चाह करने वाले को पुण्य बंध नहीं होता है।

(क) बोये पेड़ बबूल के आम कहाँ से खाय—एक भक्त के पुत्र को केन्सर की बीमारी हो गई। उसके पिता ने अनेक विधान पूजनादि धार्मिक अनुष्ठान कराये, किन्तु मृत्यु को इन्द्र अहमिन्द्र एवं जिनेन्द्र भी रोक नहीं सकते। अतएव उसका पुत्र भी मृत्यु की गोद में सो गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह बच नहीं सका। वृद्ध महाशय ने सोचा—मैंने इतने पूजन विधानादि धर्म कार्य किए किन्तु मुझे उसका फल कुछ नहीं मिला। अतः यह सब पूजा धर्म व्यर्थ है। ऐसा सोचकर उसने मन्दिर जाना भी छोड़ दिया। लोग लौकिक कामना के पापभाव को लेकर पुण्य का फल चाहते हैं, वह कैसे मिल सकता है? निष्काम भक्ति में ही अनन्त शक्ति है।

(ख) कामना के छिद्र—एक सज्जन ने पूछा—भगवान की पूजा करके भी मेरे संकट दूर क्यों नहीं होते? मैंने कहा—मैं विद्यार्थी अवस्था में एक बार कुछ मित्रों के साथ में एक बगीचे में गया था। गर्मी के दिन थे, सबको प्यास लग रही थी। कुँए पर एक बालटी पड़ी थी, उसे कुँए में डाल दिया। उसे जब खींचा तो बालटी खाली आई। आश्चर्य का ठिकाना न रहा, सब लोग हँस पड़े। देखा तो बालटी में छेद ही छेद थे। मानों हमारा मन भी इसी बालटी की तरह है, जिसमें संसारी कामनाओं के अनंत छेद हो रहे हैं।

२८. प्रश्न—भगवान् जब हमें कुछ देते-लेते नहीं तो उनके दर्शन पूजन से क्या लाभ है?

उत्तर—उनके गुणों का स्मरण करने से हमें सुख शांति का रास्ता मिल जाता है। इससे बड़ा लाभ और क्या हो सकता है।

२९. प्रश्न—भक्ति से भी क्या कर्मों की निर्जरा होती है या नहीं?

उत्तर—पंच परमेष्ठी की भक्ति से पुण्यबंध होता है और यदि उसी समय अभेदभक्ति (स्वानुभवरूप दशा) प्रगट हो जावे तो निर्जरा भी होती है।

३०. प्रश्न—आजकल धर्मात्मा कम क्यों देखने में आते हैं?

उत्तर—दुनियाँ में रत्न कम और पत्थर अधिक होते हैं।

३१. प्रश्न—अरहंत देव को सच्चा नमस्कार कब होता है?

उत्तर—जब उनके बताये हुए वीतराग मार्ग पर चलें।

३२. प्रश्न—अरहंत की सच्ची स्तुति कौन कर सकता है?

उत्तर—सम्यग्ज्ञानी जीव।

३३. प्रश्न—जिसने जिनेन्द्र दर्शन की प्रतिज्ञा ली है और उसे कहीं ऐसी जगह जाना पड़ जाय कि जहां जैन मन्दिर न हो तो वहां उसे क्या करना चाहिये ? क्या कलेण्डर में छपे चित्र का दर्शन कर सकता है ?

उत्तर—ऐसे स्थानों पर पूर्व दिशा की ओर मुंह करके जिस विधि से जैन मन्दिर में दर्शन पूजन करता है, वैसे वहां बिना द्रव्यके भाव पूजा कर लेना चाहिये। चित्र भी रख सकते हैं किन्तु द्रव्य नहीं चढ़ना चाहिये।

३४. प्रश्न—जिसके यहां सूतक हो जावे और उसको जिनेन्द्र-दर्शन का नियम हो तो वह दर्शन कर सकता है या नहीं ?

उत्तर—सूतक (जन्म) पातक (मरण) में जिनेन्द्र दर्शन करने की रोक नहीं है किन्तु द्रव्य चढ़ाना और मन्दिर के उपकरणों का नहीं छूना चाहिये।

३५. प्रश्न—सूतक क्यों लगता है और यदि उस समय शास्त्र छू लिया जावे तो पाप लगता है क्या ?

उत्तर—बालक के जन्म के समय को सूतक और मरण को पातक कहते हैं। मूलाचार टीका में कहा है—जुगुप्सा या गर्हा दो प्रकार की होती है-लौकिकी व लोकोत्तर। लोक-व्यवहार शोधनार्थ सूतक आदि का निवारण करने के लिए लौकिकी जुगुप्सा की जाती है, वह छोड़ने योग्य है और परमार्थ या लोकोत्तर जुगुप्सा करनी योग्य है। जैसे रागादि में हेय बुद्धि। पृष्ठ ६८६। बोध पाहुड़, भगवती आराधना, त्रिलोकसार, अनगार धर्मामृत में, लाटी संहिता आदि में आहारदान के प्रकरण के अन्तर्गत सूतक पातक में आहार-दान नहीं देना चाहिए ऐसा लिखा है।

३६. प्रश्न—यदि कोई किसी को जिनेन्द्रदर्शन से रोके तो पाप का भागी है या नहीं ?

उत्तर—यदि कोई भक्ति से दर्शन करना चाहता है तो उसे रोकने वाला पापी ही है।

३७. प्रश्न—धार्मिक कार्यों में बाधा डालने से कौन-सा बंध होता है।

उत्तर—पाप कर्मों का बंध होता है।

३८. प्रश्न—क्या मन्दिर में जैनेतर पुराण पढ़े जा सकते हैं ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि वे सब विकथा में शामिल हैं, और विकथा से पाप बन्ध होता है। अतः मन्दिर में नहीं पढ़ना चाहिये।

३९. प्रश्न—(१) पूजन के लिए एक पुजारी की पहनी हुई धोती दूसरा पुजारी पहिन सकता है या नहीं ? (२) घर के शुद्ध धोती, दुपट्टा से पूजन हो सकती है या नहीं ? (३) गृहस्थी की धोती उपयोग में लाना चाहिए या नहीं ? आदि पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—(१) मन्दिर के या घर के (गृहस्थी के अतिरिक्त) धुले हुए शुद्ध स्वच्छ (मैला, कुचैला या जरा भी फटा हुआ न हो)

धोती दुपट्टा से पूजन कर सकते हैं। एक दूसरे की पहिनी हुई धोती उपयोग में नहीं लेना चाहिए। धुले हुए वस्त्र का ही पूजा में उपयोग करना चाहिए।

(२) घर का धुला हुआ स्वच्छ शुद्ध धोती दुपट्टा सबसे अधिक उपयोगी है। लोग मन्दिर का ही धोती दुपट्टा और मन्दिरजी का द्रव्य, सब कुछ मंदिर का लेकर पूजन करते हैं, घर का कुछ भी त्याग नहीं करते हैं। फिर द्रव्य पूजन का क्या अर्थ रहा? कुछ अपना भी शामिल अवश्य करना चाहिए, यदि मन्दिर दूर पड़ता हो तो मन्दिर में अपना धोती दुपट्टा रख लेवें, उससे पूजा करें।

(३) जब घर गृहस्थी में कभी दूसरे के कपड़े उपयोग में नहीं लाते, फिर पूजन जैसे धार्मिक कार्य में मंदिर के द्रव्य से खरीदा हुआ सामान क्यों उपयोग में लायें? कोई विशेष असमर्थ हो या किसी विशेष कारण वश उपयोग करना पड़े तो हानि नहीं।

मंदिर में मंदिर की धोती लेना पड़े तो घर के अशुद्ध कपड़ों को उतार कर गीला तौलिया आदि पहिन कर फिर शुद्ध वस्त्र पहिनना चाहिए।

बर्तन आदि भी अपने हाथ से मांज कर रख देना चाहिए। माली से नहीं मंजवाना चाहिए। पूजन के बाद पहने हुए कपड़े भी अपने हाथ से धोकर डालना चाहिए।

४०. प्रश्न—क्या शुद्ध (धुले हुए) सूट पहिन कर पूजा की जा सकती है?

उत्तर—नहीं, क्योंकि पूजा करने वाले का भी धोती दुपट्टा का अपना लिबास है। जैसे सैनिक का अपना सुनिश्चित लिबास होता है। भारतीय-सांस्कृतिक वेशभूषा का भी अपना महत्त्व है।

४१. प्रश्न—जब प्रतिमा पर पंच कल्याणक प्रतिष्ठा विधि रके निर्वाण कल्याणक कर लेते हैं और प्रतिमा में अरहंत (१३वें णस्थान की) दशा की स्थापना है। फिर जन्म कल्याणक की ल्पना कर जलाभिषेक करते हैं। यह कहां तक उचित है ?

उत्तर—प्रतिमा अरहंत भगवान की है उसकी प्रक्षाल करना ही उपयुक्त है, किन्तु स्थापना निक्षेप से प्रथा चल पड़ी है। इसलिये जन्म कल्याणक की कल्पना करके अभिषेक किया जाता है।

४२. प्रश्न—जब मुनि स्नान नहीं करते तब प्रतिमा को स्नान क्यों कराया जाता है। इससे श्वेताम्बर मत की पुष्टि होती है। फिर वस्त्रादि भी पहिनाना चाहिए ?

उत्तर—जिस प्रकार मोक्ष को प्राप्त तीर्थंकर की पंच कल्याणक पूजा भी करते हैं। इसी प्रकार अभिषेक जन्म कल्याणक की पूजा है। श्वेताम्बर मत में तो वस्त्रादि सहित भी पूर्ण वीतरागता का सद्भाव मानते हैं किन्तु दिगम्बर अन्तर वाहिर परिग्रह रहित वीतरागता के पुजारी हैं।

४३. प्रश्न—श्री जिनेन्द्रदेव की अभिषेक-पूजा मूल परम्परा के अनुसार किस प्रकार की जानी चाहिए ?

उत्तर—पूजा के मुख्य अंग दो हैं—अभिषेक और पूजा। उत्तरकाल में सोमदेव सूरि ने पूजा के जिन अंगों का निर्देश किया है उनका इन दोनों अङ्गों में अन्तर्भाव हो जाता है। अतः यहां इन दोनों अंगों की दृष्टि से ही विचार करते हैं। उनमें प्रथम अंग अभिषेक है। जब भगवान् जिनका जन्म होता है तब इन्द्र वड़े भारी समारम्भ के साथ वालक स्वरूप भगवान जिनको सुमेरु पर्वत पर ले जाकर १००८ कलशों से उनका अभिषेक करते हैं।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य वात है कि भगवान् जिनको गर्भगृह में से लाने का कार्य स्वयं इन्द्राणी करती है और अभिषेक होने के

है। ऐसा करते हुए दूसरे त्रस-स्थावर जीवों को अणमात्र
ा न पहुँचे इसका वह पूरा ध्यान रखता है, क्योंकि लौकिक
ं ही जब पूरी सावधानी रखता है, तो यह जिनमार्ग है, तब
की प्रसिद्धि में निमित्त भूत देव-पूजा आदि में तो वह
होनी ही चाहिए, अन्यथा इष्ट फल की प्राप्ति होना दुर्लभ
एव प्रत्येक गृहस्थ भी जिनपूजा में ऐसे ही द्रव्य का उपयोग
है जो त्रस और स्थावर जीवों को बाधा पहुँचाये बिना
से प्राप्त होते हैं।

४४. प्रश्न—गंधोदक लेने के पूर्व या पश्चात् हाथ कैसे धोना
?

उत्तर—पहिले भी शुद्ध जल से हाथ धोना चाहिए, जल में
का अंश मिल जाने से जल अशुद्ध थोड़े ही हो जाता है।
प्रतिमाजी का स्पर्श कर पवित्र हो जाता है। वही जल
ाव से पाप नाश करने में निमित्त बन जाता है। पश्चात् भी
ध्रे जल से हाथ धो लेना चाहिए।

४५. प्रश्न—क्या गंधोदक पीया जा सकता है ?

उत्तर—नहीं, वह तो केवल नाभि से ऊपर के अंगों में लगाया
।

४६. प्रश्न—आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव के मोक्ष जाने के पहले
त पूजा थी यदि थी तो किन मूर्तियों की पूजा की जाती थी ?

उत्तर—महापुराण पर्व १६ में प्रकरण आया है कि भगवान
थ ने जनता की पुकार पर उन्हें असि (शस्त्र) मसि (लेखन)
वेद्या, वाणिज्य और शिल्प (कला कौशल) का उपदेश
पश्चात् स्मरण कर इन्द्र को बुलाया। इन्द्र ने प्रजा के
सर्वप्रथम जिन मन्दिरों की रचना की। यथा—

रहे। उस समय दिशाओं का विकल्प नहीं रखना चाहिये। भगवान की सन्मुखता ही सबसे श्रेष्ठ दिशा है।

सामूहिक पूजन या चतुर्मुख प्रतिमा के समक्ष किसी भी दिशा की ओर मुख करके पूजा कर सकते हैं। ध्यान भी प्रतिमा के सन्मुख या पूर्व, उत्तर दिशाओं में करना चाहिए। स्वाध्याय किसी भी दिशा में कर सकते हैं।

५२. प्रश्न—जिनपूजन अष्टद्रव्य से ही क्यों की जानी चाहिए, इसमें क्या कोई शास्त्रोक्त प्रमाण है?

उत्तर—प्राचीनकाल से वाह्य द्रव्य का अवलम्बन लेकर जिन पूजा आठ द्रव्यों से होती आ रही है और आगम में इन द्रव्यों के नाम भी गिनाये हैं। इसके सिवाय जिन पूजन अष्ट द्रव्य से की जानी चाहिए इसके लिए और शास्त्रोक्त प्रमाण क्या चाहिए? फिर भी शास्त्रोक्त प्रमाण के लिये तिलोयपण्णत्ती ग्रंथ देखिये जो [illegible] शती का प्राचीन ग्रन्थ है वाह्य जिन द्रव्यों को यह संसारी प्राणी भोगोपभोग का साधन मानता है उनमें जिनदेव के गुणों के [illegible] हेय बुद्धि उत्पन्न की जाय यह अष्ट द्रव्य से पूजन करने का प्रयोजन है। आठ द्रव्यों में पृथक्-पृथक् और समुच्चय रूप से भोगोपभोग के बाह्य सब साधनों का अन्तर्भाव कर लिया गया है [illegible] उनका त्याग कर आत्मगुणों में रुचि उत्पन्न करना प्रत्येक [illegible] का प्रयोजन है। "निर्वपामीति स्वाहा" ऐसा जो प्रत्येक द्रव्य [illegible] के बाद बोलते हैं इसमें भी निर्वपन का अर्थ त्याग होता [illegible] नहीं है।

५३. प्रश्न—पूजन अष्ट द्रव्य से ही क्यों की जाती है?

उत्तर—जिन भगवान की तरह गुणों को प्राप्त करने के लिए [illegible] है। अतः गुणों प्राप्ति के ये आठ प्रकार ही हैं। [illegible]

उत्तर—प्रदक्षिणा के क्रम को ध्यान में रखकर स्वस्तिक ना चाहिए। पूजन सामग्री का थाल दाहिनी ओर रखना हिए। जिस थाल में सामग्री चढ़ाई जाती है वह थाल बाईं ओर मुख रखना चाहिए। ठोना जिस थाल में सामग्री चढ़ाई जाती उसके अग्रभाग की ओर रखना चाहिए आदि। अपने पास जो शेष समझदार हो उससे यह सब पद्धति समझ लेनी चाहिये। या ा करते हुए पूजकों को प्रत्यक्ष देखकर इसकी परम्परा का ज्ञान रना चाहिए।

६२. प्रश्न—जैन धर्म में स्वाहा शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर—"स्वाहा" मंगलवाची अव्यय पद है। इसका मंत्र-त के अर्थ और आह्वानन के अर्थ में भी प्रयोग होता है।

६३. प्रश्न—पूजन के प्रारम्भ में आह्वानन और स्थापना की ाती है। किन्तु अरिहन्त आदि परमेष्ठी कहीं आते जाते नहीं तब जा में उनका आह्वानन और स्थापना क्यों की जाती है ?

उत्तर—आजकल जो नित्यपूजादि में देवशास्त्र गुरु-दशलक्षण-रत्नत्रय-पंचमेरु-निर्वाण क्षेत्रादि का आह्वानन-विसर्जन ठूणे में किया जाता है यह प्रणाली समुचित प्रतीत नहीं होती—यह आधुनिक, असंगत और सिद्धांत विरुद्ध पद्धति है। क्योंकि अरहंत सिद्धादि मुक्त जीव किसी के बुलाने से आते नहीं हैं और न किसी के भेजने से जाते हैं। इसके सिवा जब एक ही समय में अनेक पूजक उनका आह्वान करेंगे तो वे किसके पास जायेंगे और किसके पास नहीं जायेंगे ? कारण कि मुक्तात्मा तो संसार में कभी लौटकर नहीं आते हैं। यह तो रही मुक्तात्माओं की बात किन्तु जो अचेतन स्थिर हैं ऐसे पंचमेरु और निर्वाण क्षेत्रादि वे किसी के लिए कैसे गमना गमन करेंगे ? तथा रत्नत्रय और दशलक्षण जैसे उत्कृष्ट गुणों का कैसे कोई विसर्जन करेगा ? आदि अनेक विप्रतिपत्तियां और असंगतियां हैं।

ये सब ऊलजलूल व्यर्थ की क्रियायें हैं जो वैज्ञानिक-सुसंस्कृत-युक्ति-वादी जैनधर्म की प्रतिष्ठा (PRESTIGE) के विरुद्ध हैं। इन्हें चाहे भक्ति का अतिरेक कहें किन्तु हैं ये सब विडम्बनामात्र। प्राचीन ग्रंथों में कहीं इनका उल्लेख नहीं है।

प्रतिष्ठा और मंडल विधानादि में इन्द्र द्वारा चतुर्णिकाय देवों का आह्वान और विसर्जन करना शास्त्रों में बताया है जो संगत है परन्तु वेदी में अरहंतादि की प्रतिमा एवं धातु के पंचमेरु विराज-मान रहते भी ठूणे में इनका आह्वान-विसर्जन करना बिलकुल असंगत है। मनीषियों को विचार कर योग्य सुधार करना चाहिये। विशेष के लिये "जैननिबंध-रत्नावली" का ३४वां निबंध "पंचोप-चारी पूजा" तथा "शासन देव पूजा-रहस्य" पुस्तक द्रष्टव्य है।

प्राचीन काल में सामायिक, स्तुति, वन्दना आदि छह कर्म प्रचलित थे। आगम में मुनियों और गृहस्थों दोनों के लिए [illegible] करणीय कहे गये हैं। वर्तमान पूजा उन्हीं का अंग है। मुनि तो स्वा-[illegible] [illegible] परवश (अन्तरंग राग-द्वेष के और बहिरंग से अप्र-[illegible] के अभाव) न होकर ही अपने आवश्यक कर्म को सम्पन्न करता है। यह एकान्त नियम है, इसका अपवाद नहीं। इतना ही [illegible] जो मुनिधर्म को अंगीकार कर किसी भी प्रकार से [illegible] करता है वह वास्तव में द्रव्यलिंगी मुनि भी नहीं, किन्तु गृहस्थ के लिए दोनों प्रकार की विधि विहित बतलाई गई है। [illegible] का अवलम्बन लिए बिना जो विधि सम्पन्न की जाती है [illegible] कहते हैं और बाह्य में [illegible] द्रव्य के अवलम्बन [illegible] सम्पन्न की जाती है उसे पूजन कहते हैं। [illegible] दोनों का एक ही है। यह प्राचीन परम्परा है।

यह स्पष्ट है कि अरिहंत परमेष्ठी आदि कहीं आते जाते [illegible] [illegible] भी सम्भव नहीं, इसलिए [illegible]

परम्परा में स्थापना निक्षेप को भी प्रमुख स्थान मिला हुआ है। जो पूजक श्री जिनमन्दिर में जाकर जिनदेव की पूजा स्तुति करता है वह प्रतिमा रूप से स्थापित जिनदेव को देखकर अपने मन में अनन्त-ज्ञान आदि गुणों से विभूषित जिनदेव आदि का संकल्प कर उनसे अपने आत्मा को युक्त करता है और तत्स्वरूप परिणाम को ही यथार्थ स्तुति–वन्दना मानता है। जिसे वर्तमान में आह्वानन, स्थापना और सन्निधीकरण कहते हैं उसका यही तात्पर्य लेना चाहिए। मन, वचन, कायकी एकाग्रता होकर स्तुति-वन्दना विधि को सम्पन्न करने का यही जिनमार्ग है। यद्यपि वर्तमान काल में जिनपूजन के समय शब्दों द्वारा भी इस विधि का उच्चारण किया जाता है और जिनदर्शन के समय नहीं। किन्तु उक्त विवक्षा दोनों स्थलों पर समान होने से उक्त परिणाम में अन्तर नहीं पड़ता। इससे पूजा के समय आह्वानन, स्थापना और सन्निधीकरण क्यों किया जाने लगा इसका स्पष्टीकरण हो जाता है।

इसका एक कारण यह भी जान पड़ता है कि पूजक के सामने किसी एक या एकाधिक तीर्थङ्कर की प्रतिमा सामने रहती है। इसलिए वह जिस तीर्थङ्कर आदि की पूजा करने का भाव करता है, प्रतिमा के अवलम्बन द्वारा अपनी बुद्धि में उनका आह्वानन, स्थापना और सन्निधीकरण करके उपासना करता है, इसलिए भी पूजा के समय यह विधि सम्पन्न की जाने लगी है। यहां बाह्य आलम्बन मुख्य नहीं है, किन्तु तत्स्वरूप परिणाम मुख्य है। अन्यथा मन, वचन, काय की एकाग्रता नहीं बन सकती। स्पष्ट है कि आह्वानन आदि शब्दों द्वारा मन, वचन, काय की एकाग्रता को सूचित किया गया है और इसीलिए इस विधि को पूजन में स्थान मिला होना चाहिए। इससे अन्य प्रयोजन लेना उचित नहीं है।

६४. प्रश्न—पूजन करते समय चांवलों में क्यों स्थापना करना चाहिए ?

उत्तर—जिनागम में चांवलों में स्थापना करने का निषेध किया है। वसुनंदि श्रावकाचार में लिखा है कि—हुंडावसर्पिणी काल में अतदाकार स्थापना नहीं होती।

स्थापना और विसर्जन के विषय में विचार—पूजन प्रारम्भ करने से पूर्व स्थापना की जाती है और पूजन के अंत में विसर्जन किया जाता है। क्या यह क्रिया जैन पद्धति से मेल खाती है या नहीं? प्रश्न विचारणीय है। साथ में यह भी चिंतनीय है कि स्थापना क्या है और विसर्जन क्या है?

सबसे पूर्व स्थापना पर विचार करते हैं। जिनकी हम पूजन करते हैं स्थापना में उनका हम आह्वानन स्थापन और सन्निधी-करण करते हैं। ऐसा करके क्या हम भगवान को मोक्ष से वापस बुलाने का प्रयत्न करते हैं और यदि ऐसा करते हैं तो क्या यह भावना उपयुक्त है? साथ ही प्रतिमा हमारे सामने उपस्थित होने पर भी हम एक ठोने पर स्थापना करते हैं। जब प्रतिमा की तदाकार स्थापना है तो फिर चांवलों में अतदाकार स्थापना की कल्पना क्यों करते हैं? और यदि उन पीले चांवलों में स्थापना करते हैं तो प्रतिमा से अधिक वे पीले चांवल पूज्य हुए? तथा जब प्रतिमाजी विराजमान हैं, सामने ही स्थापित हैं, तब फिर चांवल में स्थापना की आवश्यकता क्यों पड़ी? और बुलाने की क्रिया की क्या आवश्यकता है? तथा फिर वापस भेज देने की क्रिया विसर्जन तो और भी उपहासास्पद है। लौकिक में भी किसी को बुलाकर यह नहीं कहा कि आप वापस चले जाइये, किन्तु इस पर कभी विचार किया ही नहीं। क्योंकि हम पूजा पद्धति में बहुभाग की क्रियाएं [illegible] वैदिक धर्म से आई हैं। विसर्जन के चारों श्लोक शब्दशः [illegible] हैं। [illegible] देवी देवताओं को बुलाने और भेजने [illegible] है। क्योंकि उनके अग्नि, जल, वायु आदि अनेक देव [illegible]

अब रह गया मोक्ष का मार्ग। जिनेन्द्रदेव की शरण में इसलिए जाते हैं कि हमें उनका दर्शन करने से उनके चरित्र का ठीक-ठीक परिज्ञान हो। पहले हमारे समान वे भी संसारी थे। उसके बाद उन्होंने ऐसा कौनसा कार्य किया जिससे उनकी संसार की परिपाटी छूटकर वे मोक्ष के पात्र बने। प्रत्येक मुमुक्षु को यही जान लेना उनकी सच्ची पूजा है। और यही उनके गुणों में अनुराग है। इससे अपना अज्ञान दूर होकर अपने आत्मा के भान पूर्वक मोक्ष का मार्ग खुल जाता है। जिनेन्द्रदेव को अष्ट द्रव्य से पूजा का अन्य कोई उपयोग नहीं है, और यदि कोई अज्ञानी लौकिक वाञ्छा से जिनेन्द्रदेव की पूजन करता है तो उसका वह कार्य ऐसा ही है जैसा काग उड़ाने के लिए कंकड़ के स्थान में सच्चे मोती का उपयोग करना (फेंकना)।

५५. प्रश्न—नन्दीश्वर द्वीप में देव क्या अष्ट द्रव्य से पूजा करते हैं?

उत्तर—देव नन्दीश्वर द्वीप में जाकर दोनों प्रकार से पूजा करते हैं। भक्ति भी करते हैं और द्रव्य से पूजा भी करते हैं। किन्तु [illegible] द्रव्य सामग्री दिव्य रहती है चैत्यभक्ति की अञ्चलिका [illegible] है उसमें बताया है—"दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण [illegible], दिव्वेण [illegible], दिव्वेण [illegible], दिव्वेण [illegible], दिव्वेण [illegible] [illegible] अच्चंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति। [illegible] [illegible] अच्चेमि पुज्जेमि, वंदामि, णमंसामि।" [illegible]

[illegible]

इस विषय में विशेष जानकारी के लिये श्री रतनलाल कटारिया केकड़ी कृत "शासनदेव पूजा रहस्य" (विद्वद् परिषद द्वारा १००१/-रु० से पुरस्कृत) पुस्तक पढ़ना चाहिये। इसमें बताया है कि—विसर्जन के श्लोक का तीसरा चरण बदला हुआ है यानि "ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या" के स्थान में "ते जिनाभ्यर्चनंकृत्वा" पाठ होना चाहिये पुरानी सभी हस्तलिखित प्रतियों में यही संगत और शुद्ध पाठ है। इसका अर्थ इस प्रकार है—पूजा के लिये जो देवगण बुलाये गये थे और जिन्होंने अर्हत्पूजा के लिए पूजा-द्रव्य (अर्घ) प्राप्त कर लिया था वे जिन-पूजा करके अपने अपने स्थान को जावें। पूरा शुद्ध श्लोक इस प्रकार है :—

आहूता ये पुरा देवा, लब्धभागाः यथाक्रमम्।
ते जिनाभ्यर्चनंकृत्वा, सर्वे यान्तु यथा स्थितं॥

इसका हिन्दी पद्य भी इस प्रकार शुद्ध कर लेना चाहिये।

आये जो जो देवगण, लीने अर्घ प्रमाण।
पूजा करके जावहु, अपने अपने थान॥

पूजा के भेदों में एक इन्द्रध्वज पूजा है (जिसमें इन्द्र बनकर जिनेन्द्र की पूजा की जाती है) जिसे पंचकल्याणक-पूजा भी कहते हैं आज वही पूजा नित्यपूजा में उतर आई है। इसीसे इसमें अभिषेक (जन्मकल्याणक) अष्ट द्रव्य पूजा (तपोकल्याण – आहार-दान) आदि का समावेश हो गया है। पंचकल्याणक में इन्द्र जिन-महोत्सव के ठाठ के लिये चतुर्णिकाय के देवों को बुलाता है यह है "आहूता ये पुरा देवा" (आह्वानन) फिर उन देवों को जिनेन्द्र की पूजा के लिये अर्घ-पूजा द्रव्य देता है (उन देवों की पूजा के लिये नहीं क्योंकि इन्द्र देवों का स्वामी है वह देवों की पूजा कैसे कर सकता है तथा यह महोत्सव भी अर्हन्त का है उन्हीं की पूजा होगी) यह

७७. **प्रश्न**—निर्माल्य द्रव्य किसे कहते हैं ? माली आदि या पुजारी क्या उसे ग्रहण कर सकता है ?

उत्तर—पूजा आदि के रूप में अष्ट द्रव्य रूप जो सामग्री स्वाहा करके चढ़ा दी जाती है। उसका क्या हो, इस दृष्टि से पुराने काल से देश भेद से परिपाटी चली आ रही है। उत्तर में सर्वत्र माली उसका उपयोग करता है। दक्षिण में इससे भिन्न प्रथा है। प्रशस्त मार्ग यही है कि यह सामग्री किसी भी प्रकार से जैन गृहस्थों के द्वारा उपयोग में नहीं लाई जानी चाहिए। यही कारण है कि सब जगह इसके अतिरिक्त किसी न किसी रूप में देव द्रव्यों से पारिश्रमिक दिया जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से यही उपयुक्त मार्ग है, इसलिए पुराने काल से यह व्यवस्था चली आ रही है।

पूजा के विषय में विशेष जानकारी

७८. **प्रश्न**—कभी कभी नहीं चाहते हुए भी भगवान की स्तुति आदि में मन नहीं लगता है, यहाँ वहाँ चला जाता है, इसका क्या कारण है ?

उत्तर—दो चार भाई या बहिनें मिलकर सुन्दर तर्ज में स्तुति पढ़ें तो मन एकाग्र हो जाता है। अनादि से मन के संस्कार ही सांसारिक विषयों में भागने के पड़े हुए हैं। प्रयत्न पूर्वक भक्ति में उपयोग जुटाना पड़ता है।

७९. **प्रश्न**—प्रतिदिन सुबह-शाम जिनपूजा, स्वाध्याय आदि करते रहने पर भी जीवन में जो शान्ति और समाधान होना चाहिए वह क्यों नहीं होता, हमारी कहाँ भूल है ?

उत्तर—अन्तरंग परिणामों की सम्हाल किये बिना केवल जिनपूजा और स्वाध्याय आदि से जीवन में शान्ति और समाधान होना सम्भव नहीं है और अन्तरंग परिणामों की सम्हाल का उपाय

जिन पूजा और स्वाध्याय के समय जिनदेव के सम्यक् स्वरूप को जानकर परमार्थ से उसके अनुरूप अपने स्वरूप को समझते हुए उसमें रममाण होना। अनादिकाल से और तो सब किया, एक मात्र यही नहीं किया इसलिए यह जीव संसार का पात्र बनकर दुखी हो रहा है। बस इस जीव को अपनी अनादि कालीन इस भूल को ही दूर करना है। इसके दूर होते ही यह जीव जिनपूजा और स्वाध्याय आदि करते समय जीवन में परम शान्ति और समाधान का अवश्य ही अनुभव करेगा। फिर तो उसके जीवन की धारा ही बदल जायगी। आत्मशांति का यदि कोई मार्ग है तो एक मात्र यही मार्ग है। वीतराग जिनदेव का भी यही उपदेश है कि यदि तुम सच्ची शान्ति चाहते हो तो अपनी सम्हाल करो।

८०. प्रश्न—भगवान की स्तुति पूजा में मन नहीं लगता है क्या करें?

उत्तर—यदि भगवान का स्वरूप समझ में आ जाए तो अवश्य मन लग जायेगा।

८१. प्रश्न—मन स्थिर कैसे हो सकता है?

उत्तर—आत्म स्थिरता आने पर मन स्थिर हो जाता है।

मन को निश्चल करने का उपाय—महात्मा बुद्ध को प्यास लगी थी, उन्होंने आनन्द से कहा—आनन्द, पानी भरकर लाओ, मुझे प्यास लग रही है। आनन्द कमण्डलु लेकर नदी में जल भरने गया किन्तु एक बैलगाड़ी के निकल जाने से पानी गँदला हो रहा था। आनन्द लौट आया। बुद्ध ने कहा—कहीं दूसरी नदी नाले से जल लाओ, प्यास जोर से लगी है। आनन्द अगले नाले पर गए। वहाँ भी जल गन्दा हो रहा था। आनन्द खाली हाथ वापस लौट आया। महात्मा बुद्ध ने कहा—यदि पहले नाले पर ही थोड़े समय बैठ जाते तो पानी शुद्ध हो जाता। उसी तरह मन को छेड़ो मत, अपने

स्वभाव में वैठ जाओ तो मन अपने आप स्थिर और शुद्ध ह
है।

८२. प्रश्न—भक्तामर स्तोत्र का क्या माहात्म्य है ?

उत्तर—मनोयोग पूर्वक इच्छा रहित होकर पढ़े तो पु
वन्ध होता है और पाप (दुख साधनों) का नाश होता है।

८३. प्रश्न—विना अर्थ समझे भक्तामर स्तोत्र के पा
फल ?

उत्तर—यदि मन स्थिर रहे तो अल्प पुण्य बंध हो सक
किन्तु विना भाव समझे मन स्थिर हो नहीं पाता है। यहाँ
भाग जाता है। उसका अर्थ समझ लेने से उसका भाव समझ में
जाने से भक्ति में मन अधिक स्थिर हो सकता है। उससे विशेष पु
वन्ध होता है।

८४. प्रश्न—सामायिक की तरह क्या भक्तामर आदि के प
का समय भी निश्चित है ?

उत्तर—हां त्रिकाल करना चाहिए।

८५. प्रश्न—भक्तामर का अखण्ड पाठ १५ दिन कराने वाले
रात्रि को धूपादि जलाते रहें यह क्या अहिंसा धर्म में उचित है ?

उत्तर—रात्रि को धूपादि का जलाना या अन्य पूजनादि करने
का शास्त्रों में स्पष्ट निषेध है क्योंकि इससे जीव हिंसा अधिक होती
है। जबकि अहिंसा ही धर्म है और हिंसा पाप है। पुरुषार्थ सि०
उपाय में धर्म लालसा से की गई हिंसाको महापाप बतलाया है। धर्म
क्षेत्रमें की गई हिंसा भले वह धर्म कार्य के लिए हो जैसे रातभर ट्यूब
लाईट जला कर जीव हिंसा का साधन जुटाना महापाप बंध का
कारण है। इसी को रत्नकरण्ड श्रावकाचार और मोक्ष मार्ग प्रकाशक
में भी बहुत निषेध किया है। धर्मी जीव को हर स्थान पर विवेक

लिये दान देना चाहिए। गृहस्थों का कर्तव्य है कि—धर्म के विरुद्ध ऐसे कार्यों को नहीं करें।

८६. प्रश्न—कार्तिक वदि ३० के दिन लाडू चढ़ाने से पहले दीपक (दिवाली) क्यों नहीं जलाना चाहिए?

उत्तर—प्रातः भगवान महावीर को निर्वाण कल्याणक के लिए लाडू चढ़ाकर शाम को गौतम गणधर को केवलज्ञान हुआ है उस शाम को दीपावली मनाना चाहिए। प्रथम का [illegible] है।

८७. प्रश्न—दीपक जलाने से अनेक पतंगे मरते हैं फिर भी मन्दिर में दीपक क्यों जलाते हैं?

उत्तर—दीपक को कांच या जाली के भीतर रख देने से हिंसा से बचाव हो सकता है। (बिजली से तो घोर हिंसा होती है)

८८. प्रश्न—सन्ध्या समय पांच बत्तियों से भगवान की आरती करना क्या उचित है?

उत्तर—जो भाई, बहिन भगवान के दर्शन-पूजन आदि के निमित्त श्री जिन मन्दिरजी में आते हैं उन्हें श्री जिन मन्दिर में प्रवेश करने के बाद सर्व प्रथम ईर्यापथ शुद्धि करनी चाहिए, ऐसा आगम का विधान है। मार्ग में चलते हुए मेरे द्वारा जिन एकेन्द्रिय आदि जीवों का मर्दन हुआ हो, मारे गये हों, पलटे गये हों, तो हे भगवान! मेरा दोष मिथ्या हो यह ईर्यापथ शुद्धि का अर्थ है। ऐसी हालत में यह विचार लो कि पूजा करते समय जो मैं मन, वचन, काय की प्रवृत्ति करता हूँ, वह ऐसी होनी चाहिए जिससे दूसरे जीवों को अपनी प्रवृत्ति द्वारा बुद्धि पूर्वक बाधा पहुंचना सम्भव न हो। कुछ समय से बैटरी सेल लगाकर निर्मित की गई आरती चल पड़ी है। ऐसी आरती से भक्ति करने में प्रायः उस दोष का मार्जन हो

जाता है जो दीपक की आरती से भक्ति करने में लगता है। प्रत्येक भाई, वहिन को भगवान् को भक्ति-पूजा में आरम्भ बहुत न हो, इस ओर ध्यान रखना अति आवश्यक है।

८९. **प्रश्न**—क्या जिनदेव की दीपक से आरती करनी योग्य है ?

उत्तर—हमें जहाँ तक ज्ञात है पच्चीस वर्ष पूर्व वर्षा काल के दिनों में जिन मन्दिर में दीपक नहीं जलाया जाता था। कहीं कहीं वारह महीने भी दीपक नहीं जलाया जाता था। या जलाया भी जाता था तो फानूस आदि की व्यवस्था रहती थी। इससे दूसरे जीवों का व्यर्थ ही वध नहीं होता था। जहाँ वर्षा काल में दीपक नहीं जलाया जाता था, वहाँ सायंकाल चार पांच वजे के लगभग वचनिका हो जाती थी। जहां वारह महोने दीपक नहीं जलाया जाता था, वहाँ भी सायंकाल चार पांच वजे के लगभग वचनिका हो जाती थी। उस समय जितने भी धार्मिक विधि-विधान होते थे, वे सव विवेक पूर्वक किये जाते थे। अहिंसा धर्म का पूरा ख्याल रखा जाता था। वह जीवन की अहिंसा थी। किन्तु विजली के आने के वाद पुरानी परिपाटी ही वदल गई है। अव तो जिनमन्दिरों में विजली ही नहीं पंखे भी दिखाई पड़ने लगे हैं। अव तो जव पंखा खोलकर वैठते हैं, तव कहीं सामायिक होती है। स्वाध्याय और प्रवचन के समय तो पंखों का होना लाजिमी हो गया है जवकि पंखा चलाना जिनमन्दिर के ८४ आसादना दोषों में है। धर्म जीवन की वस्तु है। उसके लिए जिनमन्दिर, सामायिक, स्वाध्याय और पूजा आदि सव कुछ थे। अव उनका प्रदर्शन मात्र रह गया, जान पड़ता है। हमें क्या खवर की हमारे ऐसा करने से विचारे दूसरे क्षुद्र जन्तुओं की क्या गति होती है। उनकी जो गति होती हो होओ, हमें क्या चिन्ता, हमें तो धर्म चाहिए। किन्तु यह जिनमार्ग नहीं।

जिनमार्ग में विवेक, अहिंसा पहली वस्तु है।" देखो, पूर्वकाल में गृहस्थ ईर्यापथ पूर्वक जिनमन्दिर में जाता था। और जाने के बाद ईर्यापथ शुद्धि करके समताभाव पूर्वक जिनदेव की अर्चा वन्दना स्वाध्याय आदि करता था। तब जाकर उसे आत्मीक धर्म और उसके साथ पुण्यलाभ होता था। विचार कर देखा जाय तो इस विधि में जिनदेव की दीपक से आरती करना बनता ही नहीं। ऐसे गृहस्थ के वाह्य अन्य वस्तु का आलम्बन रहता भी था तो अचित्त द्रव्य का ही आलम्बन रहता था। यह जिनमार्ग है जो तीनों कालों के लिए लागू है। वर्तमान काल के लिए भी यही मार्ग है।

अतः प्रत्येक सद्गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह जिनपूजा या आरती में विवेक से काम ले यही जिनमार्ग है।

६०. प्रश्न—पूजन में दीप तो नहीं चढ़ाते किन्तु शक्ति-शाली बिजली के वल्व जलाते हैं यह क्या विडम्बना नहीं है?

उत्तर—यह विवेकहीनता का नमूना है। प्रयोजन जीव रक्षा का होना चाहिए। आज से कुछ वर्ष पूर्व मन्दिर में रात को दीपक भी नहीं जलाते थे। यदि जलाते थे तो कपड़े की जाली के भीतर। बिजली के उजाले में तो और भी भयंकर हिंसा होती है। अतः हर स्थान पर विवेक की आवश्यकता है।

६१. प्रश्न—जिस जिनालय में आलोचना में पढ़ते हैं कि "पंखा तै पवन विलोल्यो।" उसी जिनालय में बिजली के पंखे लगा कर हिंसा के साधन जुटाते हैं। जब हम सांसारिक सुख साधन को त्याग कर धर्म साधना को आते हैं, वहाँ भी क्या हिंसा अभ्यासी के साधन जुटाना उचित है?

उत्तर—जिनालय में पंखे आदि लगाना अत्यन्त अनुचित है क्योंकि हम जिनालय में शारीरिक विषय वासना छोड़ने के लि

आंखें लगाना, अंगियां रचना, वस्त्राभरण पहनाना, गले में फूल माला डालना, हाथों में फूल चढ़ाना, चन्दन-केसर लगाना–यह सब योगीमुद्रा की विडंबना है, वीतरागता का अवर्णवाद है।

६६. प्रश्न—जैन साधुओं के २८ मूल गुणों में केशलोंच भी एक मूल गुण है। दो मास का केशलोंच उत्कृष्ट, तीन मास का मध्यम और चार मास का जघन्य माना जाता है। ज्यादा से ज्यादा चार मास में तो केशलोंच करना ही पड़ता है। तब ऋषभदेव ने एक वर्ष तक केशलोंच क्यों नहीं किया, जटा क्यों बढ़ाई ?

उत्तर—तीर्थङ्करों के लिए केश लोंच का कोई नियम (समयावधि) नहीं है। दीक्षा लेते वक्त उन्हें केश लोंच अवश्य करना होता है फिर वे इच्छानुसार जब चाहें तभी कर सकते हैं। उनके शरीर में बादर निगोद जीव प्रतिष्ठित नहीं होते। उनके नीहार नहीं होने से उनके शरीर में कभी पसीना आदि मल-स्राव नहीं होता, जिससे उनके केशों में सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति भी नहीं होती एवं उनमें वीतरागता की उत्कटता होने से केशों में शृंगार-शोभा के भाव का भी अभाव होता है। अतः उनके जटारूप केश किसी तरह दोषास्पद नहीं माने गये हैं।

६७. प्रश्न—लम्बी जटाओं वाली ऋषभ प्रतिमायें अरिहंतावस्था की है या मुनि अवस्था की ?। अरिहंतावस्था में तो लम्बी जटायें नहीं होती, अतः ऐसी प्रतिमाओं में पूज्यता की दृष्टि से क्या कोई कमी है ?

उत्तर—ऋषभ-प्रतिमा की लम्बी जटायें उनकी दीर्घकालीन तपस्या की संस्मारक है। जिस तरह बाहुबली प्रतिमा की पैरों में लिपटी बेलें उनके एक वर्ष के दुर्धर तप और निश्चल ध्यान की द्योतक हैं एवं पार्श्व-प्रतिमा पर की हुई फणाएं

उपसर्ग की परिसूचक है। इसी तरह सुपार्श्व प्रतिमा की फणाकृ
भी उनके विशेष इतिहास की द्योतक है।

इन सब बातों का उक्त प्रतिमाओं में अंकन उन महापुरुषों
जीवन की विशिष्ट घटनाओं को बताने के लिए किया गया है।

इन कायोत्सर्ग अवस्था (ध्यान) में लीन प्रतिमाओं को ह
चाहे मुनि अवस्था की भी माने तो भी वे पंच परमेष्ठी में गर्भि
होने से परम पूज्य ही हैं। वैसे ये सब प्रतिमायें जो अरिहंत हुए
उन्हीं की बनाई गई हैं। इसी से इनमें अष्ट प्रातिहार्य भी हैं। इनमें
पूज्य सिर्फ अरहंत–ध्यानमुद्रा ही हैं, फण, वेल, जटा और परिकरादि
नहीं।

शास्त्रों में केवली के भेदों में सोपसर्ग केवली भी बताये गये
हैं, जबकि केवली अवस्था में उपसर्ग नहीं होता। उपसर्ग–युक्तों को
केवली कहना जिस तरह (भूत या भावी) नैगमनय से निर्दोष है,
उसी तरह इन प्रतिमाओं को भी अरिहंत की कहने या मानने में
कोई दोष नहीं हैं।

हम नित्य देव दर्शन करते हैं। हमारा मुख्य उद्देश्य वीतराग-
स्वरूप दिगम्बर कायोत्सर्ग मुद्रा की ओर ही होना चाहिए, तभी
दर्शन की सफलता है। प्रतिमा संगमरमर की है या रत्नों की, पीतल
की है या सोने की, काली है या सफेद, खड्गासन है या पद्मासन,
अष्ट प्रातिहार्य युक्त है या रहित, ऋषभनाथ की है या महावीर की,
छोटी है या बड़ी, सोने के छत्र-भामंडलादियुक्त है या रहित, सुन्दर
मुस्कराती है या सामान्य, प्राचीन है या अर्वाचीन, मनोहर वेदी में
है या अन्यत्र इत्यादि सब विकल्प गौण हैं।

वस्तुतः जैन प्रतिमा–निर्माण का उद्देश्य दिगम्बर कायोत्सर्ग
ध्यानमुद्रा को ही सिर्फ बताना रहा है। अतः वे समस्त सांसारिक
विषयों से विमुख, रागद्वेषरहित वीतराग–स्वरूप होती हैं। उनके

शरीर पर शस्त्रास्त्र, वस्त्राभूषण, केश-सज्जा, फूल, शृंगार, मुकुट, कुण्डल, वाद्यादि नहीं होते, स्त्री, पुत्र, भाई आदि परिकर, अंगरक्षक, वाहन आदि भी वे धारण किये हुए नहीं होती। ये सब चीजें जैन प्रतिमा में उत्कीर्ण नहीं होती, फिर भी ऊपर से उन्हें किसी भी तरह शृंगारितभूषित करना एक तरह से उन्हें दूषित करना है।

९८. प्रश्न—उपसर्ग युक्त पार्श्वनाथ की मूर्ति पूज्य है या नहीं ?

उत्तर—उपसर्ग मुनि अवस्था में हुआ था, इससे उपसर्ग युक्त मूर्ति पूज्य तो है क्योंकि गुरु भी पूज्य हैं, किन्तु उसे अरहंत अवस्था की नहीं कह सकते हैं, क्योंकि केवली भगवान् को कोई उपसर्ग नहीं होता है।

९९. प्रश्न—यदि पार्श्वनाथ की मूर्ति का सर्प का फण टूटा हो तो मूर्ति खंडित मानी जायेगी या नहीं ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि दर्शन मूर्ति के करना है, न कि सर्प फण के। अतः मूर्ति तो अखंडित ही है। इसी तरह सिंहासनादि बाहरी परिकरों के क्षत होने पर भी अगर मूर्ति अक्षत है—अखंडित है तो वह अखंडित-पूज्य ही मानी जायेगी। इसके सिवा अगर कोई मूर्ति १५० वर्ष से ज्यादा प्राचीन है तो वह क्षत अंग होने पर भी पूज्य ही रहती है, ऐसा प्रतिष्ठा शास्त्रों का मत है।

१००. प्रश्न—किस मूर्ति पर चिह्न नहीं होता ?

उत्तर—साधारण अरहंत केवली की प्रतिमा पर।

१०१. प्रश्न—मानस्तम्भ में अरहंत भगवान् की मूर्ति विराजमान की जाती है या सिद्ध भगवान की ?

उत्तर—बिना चिह्न की सामान्य केवली (अरहंत) की प्रतिमा विराजमान करनी चाहिए।

१०२. प्रश्न—जिस प्रतिमा का अंग, उपांग घिस गया हो (जैसे नाक, मुँह, आँखें, कान) वह प्रतिमा पूजनीय है या नहीं? यदि नहीं तो उसका क्या करना चाहिए?

उत्तर—उपांग खण्डित प्राचीन प्रतिमा पूज्य है। जैसे अंगुली आदि से खण्डित। मुख्य अंग या पूर्ण खण्डित प्रतिमा पूज्य नहीं है। उसे किसी मन्दिर के सुरक्षित स्थान में रख देना चाहिए। या कहीं जैन पुरातत्त्व विभाग को सौंप देना चाहिए, कभी भी जलप्रवाह नहीं करना चाहिए।

१०३. प्रश्न—मूर्ति खंडित कब मानी जाती है?

उत्तर—जब उसके अंग उपांग खंडित हो जाते हैं।

पाँचवां अधिकार

१. प्रश्न—भक्ति क्या है, उसका फल क्या है ?

उत्तर—भक्ति शुभ राग (पूजा-दान करना) है, उससे लौकिक पुण्य बंध होता है। शुभ राग संसार मार्ग है, मोक्ष मार्ग नहीं। शुभ राग के फल से पंचेन्द्रिय के भोगों की सामग्री प्राप्त होती है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य पंचास्तिकाय में कहते हैं—

रागो जस्स पसत्थो अणुकंपासंसिदो य परिणामो ।
चित्ते णत्थि कलुस्सं पुण्णं जीवस्स आसवदि ॥१३५॥

अर्थ—जिसके शुभ राग है, दया सहित परिणाम है, चित्त में मलीनता नहीं है, प्रसन्नता है उसके पुण्य कर्म का आश्रव होता है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य मूलाचार में कहते हैं कि प्रशस्तराग पुण्य संचय का प्रधान कारण है—

अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्तिसंपुण्णो ।
बज्झदि बहु सो पुण्णं ण हु सो कम्मक्खयं कुणदि ॥६२॥

अर्थ—अरिहंत, सिद्ध, चैत्य, प्रवचन-परमागम, गण-ऋषि, श्राविका, आर्यिका, श्रावक और ज्ञान इनमें जो पुरुष अत्यन्त भक्ति करता है, उसको बहुत पुण्य का संचय होता है किन्तु वह पुरुष कर्म का क्षय नहीं करता है। उसके इन कार्यों से शुभोपयोग होकर पुण्याश्रव ही होता है। इनसे शुद्धोपयोग नहीं होता। अरिहंतादि की भक्ति मोक्ष के लिये कारण नहीं होती।

समयसार नाटक में पुण्य का वर्णन इस प्रकार है—

दोहा—जो विशुद्धभावनि बंधै, अरु ऊरधमुख होई ।
जो सुखदायक जगत में, पुण्य पदारथ सोई ॥२८॥

अर्थ— जो शुभभावों से बंधता है, स्वर्गादि के सम्मुख होता है, और लौकिक सुख का देने वाला है, वह पुण्य पदार्थ है ॥२८॥

जैसे कि छहढाला में कहा गया है -

> जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय;
> तहँ तें चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै ॥१७॥

अर्थ—यह जीव वैमानिक देवों में भी उत्पन्न हुआ किन्तु वहां इसने सम्यग्दर्शन के बिना दुःख उठाये और वहां से भी मरकर पृथ्वीकायिक आदि स्थावरों (मिथ्यादृष्टि देव मरकर एकेन्द्रिय होता है, सम्यग्दृष्टि नहीं) के शरीर धारण किये, अर्थात् पुनः तिर्यंचगति में जा गिरा। इस प्रकार जीव अनादिकाल से संसार में भटक रहा है और पांच परावर्तन कर रहा है।

देव इक इन्द्रिय हुआ

धनदत्त नाम का सेठ वाह्यत्याग में वहुत रुचि रखता था किन्तु तत्त्वज्ञान (भूतार्थ नय से (आत्मानुभव) श्रद्धान) प्राप्त करने में उसकी विल्कुल रुचि नहो थी। वृद्ध अवस्था में १२ व्रत भी स्वीकार कर लिये। कषाय भी वहुत मन्द थी। यथाविधि अपने व्यवहार धर्म का पालन कर रहा था। अन्त में शांत परिणामों से मृत्यु का वरण कर दूसरे स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव वन गया। वहां पर दूसरे स्वर्ग की सागरों की आयु में इन्द्रियसुखों में मग्न रहा। अन्त में माला मुरझाने से उसे यह निर्णय हो गया कि मुझे यह स्वर्ग का वैभव छोड़ना पड़ेगा। वैभव छोड़ने की चिन्ता में वह ६ माह तक अत्यन्त दुखी रहा। वैभव की इसी गृद्धता के कारण मरकर **वह एकेन्द्रिय वृक्ष वन जाता है।**

३. प्रश्न—व्यवहार का निषेध करने से तो जीव अशुभ में चला जायेगा?

उत्तर—अरे भाई! जो शुभरागरूप व्यवहार में आया है वह अशुभराग को छोड़ करके ही तो आया है। अव उसको स्व

का- निश्चय का आश्रय कराने के लिये व्यवहार का निषेध कराते हैं। वहाँ अशुभ में जाने की बात ही कहाँ है ?

४. प्रश्न—जिनवर कथित व्यवहारचरित्र का सावधानीपूर्वक पालन सम्यग्दर्शन होने का कारण होता है या नहीं ?

उत्तर—रंचमात्र भी कारण नहीं होता। सम्यग्दर्शन होने का कारण तो अपना त्रिकाली आत्मा ही है। जिनेन्द्र कथित व्यवहारचरित्र को सावधानीपूर्वक और परिपूर्ण पाले तथापि उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता।

५. प्रश्न—श्री कुन्दकुन्दाचार्य अज्ञानी (आत्मज्ञान रहित) के लिये कहते हैं—

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।
परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विदंति ॥१५३॥

अर्थ—व्रत और नियमों को धारण करते हुए तथा शील और तप करते हुए भी जो परमार्थ से बाह्य हैं (जिन्हें परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मा की अनुभूति नहीं है) वे निर्वाण को प्राप्त नहीं करते।

ऐसा ही योगसार में श्री योगीन्दु देव कहते हैं—

(१) अह पुणु अप्पा णवि मुणहि, पुण्णु जि करहि असेस।
तो वि ण पावहि सिद्धि-सुहु, पुणु संसारु भमेस ॥१५॥

अर्थ—हे जीव ! यदि तू आत्मा को नहीं जानेगा और सब पुण्य ही पुण्य करता रहेगा, तो भी तू सिद्ध सुख को नहीं पा सकता, किन्तु पुनः पुनः संसार में ही भ्रमण करेगा ॥१५॥

(२) वउ तव संजमु सीलु जिय ए सव्वइं अकयत्थु।
जांव ण जाणइ इक्क परु सुद्धउ भाउ पवित्तु ॥३१॥

आकुल होता है वह स्वयं के पाप कार्य छोड़कर देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति तथा यथाशक्ति धर्माराधना में ही अपना उपयोग लगाता है। क्योंकि तत्त्व जिज्ञासु की कषाय भी मंद हो जाती है अतः तीव्र कषायरूप मोटे पाप और व्यसन उससे सहज ही छूट जाते हैं।

विवेकी जीव के पुण्य को छोड़ने योग्य (हेय) जानकर भी पाप कार्य को छोड़कर पुण्यरूप भाव होते हैं। तत्त्वज्ञानी जीव का विवेक प्रत्येक कार्य में होता है। जैसे लड़की के उत्पन्न होते ही उसे पराये घर का धन मानकर भी उसका यथायोग्य पालन पोषण करते ही हैं।

मन, वचन, काय से पुण्य या पाप रूप प्रवृत्ति ही कर सकते हैं और इनकी प्रवृत्ति तो चलती ही रहती है। अतः ज्ञानी जीव के पाप को त्याग कर पुण्यरूप प्रवृत्ति होती है। हाँ, इतना अवश्य है, मिथ्यादृष्टि पुण्य करके धर्म मानता है, सम्यग्दृष्टि के पुण्य होता है किन्तु वह उसे संसारमार्ग ही मानता है, उसका लक्ष्य तो वीतराग-मार्ग ही है। यह मंदराग रूप (पुण्य) उसकी कमजोरी के कारण होता है। भले इस भव में वन न सके किन्तु वह तो पूर्ण वीतरागी वनने के लिए प्रयत्नशील रहता है। जो पुण्य को कर्म न मानकर धर्म मानते हैं, उन्हें तो कभी सम्यग्दर्शन भी नहीं हो सकता है और न वे सच्चे जैन वन सकते हैं। अन्य सभी मतावलंवी पुण्य को धर्म मानते हैं। एक जैन धर्म ही उसे कर्म (आश्रव तत्त्व) मानता है। यदि हम भी उसे धर्म मानें तो हम भी अन्य धर्मावलंवियों की श्रेणी में ही रहेंगे। जैनधर्म की क्लास में भर्ती होने के लिए पहले अपनी मान्यता सुधारनी पड़ेगी।

१०. प्रश्न—मुमुक्षु गृहस्थ को पुण्य परिणाम को हेय और क्षय करना ऐसा आप क्यों कहते हो ?

उत्तर—पुण्य परिणाम का क्षय तो जब शुद्धोपयोग पूर्ण हो तब होता है। निचली भूमिका में तो पुण्य परिणाम का क्षय नहीं हो सकता, फिर भी पुण्य परिणाम हेयरूप है, क्षय करने लायक है, ऐसी दृष्टि प्रथम करनी चाहिये। पुण्यभाव हेय है, क्षय करने योग्य है, ऐसा जो नहीं मानता—वह मिथ्यादृष्टि है। निचली भूमिका में शुभभाव आये बिना रहता नहीं, फिर भी पहले दृष्टि में उसका निषेध होना चाहिए।

११. प्रश्न—जिनवाणी में कथित व्यवहार का फल भी यदि संसार ही है तो उसके कथन से क्या लाभ ?

उत्तर—निश्चय सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ अपूर्ण-दशा के कारण राग की मन्दता में किस-किस प्रकार का मन्द राग होता है, चौथे, पांचवें, छठे गुणस्थानों की भूमिका में राग की क्या स्थिति होती है, पूजा, भक्ति, अणुव्रत, महाव्रतादि होते हैं, उनका व्यवहार बताने के लिए जिनागम में उनका कथन किया गया है, परन्तु इस राग की मन्दता के व्यवहार का फल तो बंधन और संसार है।

१२. प्रश्न—ज्ञानी तो व्यवहार को हेय मानता है, फिर ज्ञानी के व्यवहार का फल संसार क्यों ?

उत्तर—ज्ञानी का व्यवहार भी राग है और राग का फल संसार है। श्रावक को षट् आवश्यक मुनि को पंचमहाव्रत का विकल्प होता है, आता है, उसको निश्चय का सहचर जानकर जिनवाणी में बहुत वर्णन किया गया है, परन्तु इस राग का फल संसार है—ऐसा कहा है। जो जीव इस शुभराग से लाभ मानता है अथवा शुभराग करते-करते धर्म हो जायेगा—ऐसा मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है, अतः संसार-भ्रमण करेगा ही।

की मोटाई दो कोस की, घनवातलय की एक कोस की और तनुवात वलय की पौने सोलह सौ धनुष की है। इस तनुवातवलय के अन में उत्कृष्ट छोटी ५२५ धनुष व जघन्य ३॥ हाथ के आकार वाले अनन्त सिद्ध भगवान् अचल अनन्त सुख से तृप्त तिष्ठते हैं। उनके ऊपर का अग्रभाग लोक के अन्तिम प्रदेशों को स्पर्श करता है।

२. प्रश्न—सिद्ध शिला क्या है और कैसी है ?

उत्तर—सर्वार्थसिद्धि विमान से बारह योजन ऊपर 'ईषत्-प्राग्भार' नामक पृथ्वी है यह पृथ्वी शास्वत रहती है, जिसका कि उत्तर से दक्षिण ७ राजू का विस्तार और पूर्व से पश्चिम एक राजू का विस्तार है। इस ही के मध्य में सफेद रंग की, छत्तर के आकार (कोई कोई आचार्य चन्द्रमा के आकार की भी लिखते हैं) ढ़ाई द्वीप के प्रमाण ४५ लाख योजन चौड़ी गोल सिद्ध शिला है, यह मध्यमें आठ योजन मोटी है, यह शुद्ध स्फटिक मणी के समान है, जिसे स्वच्छ सफेद पृथ्वी भी कहते हैं। यहां एक योजन का माप दो हजार कोश का है। इस माप से ढ़ाई द्वीप के बराबर (४५ लाख योजन) व आठ योजन की मोटाई की वह पृथ्वी है। इसी सिद्ध शिला की सीध में तनुवातवलय में लोक शिखर पर सिद्ध भगवान विराजते हैं।

३. प्रश्न—क्या सिद्धशिला एकेन्द्रिय है ?

उत्तर—सिद्धशिला पृथ्वी का एक भेद है उसमें पृथ्वीकायिक जीव रहते हैं। इसका निर्देश धवला पुस्तक ४ कायमार्गणा में किया है इसलिए सिद्धशिला को एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक जीवों का शरीर मानने में आगम से कोई बाधा नहीं आती, ऐसा यहां समझना चाहिए।

४. प्रश्न—क्या वातवलयों में भी जीव हैं यदि हैं तो कौन से जीव हैं ?

उत्तर—वातवलयों में बादर वायुकायिक जीव तो हैं ही, ...कायिक आदि अन्य सूक्ष्म स्थावर जीव भी हैं।

५. प्रश्न—त्रसनाड़ी में त्रस जीव और स्थावर जीव रहते हैं। ...नाड़ी के बाहर मात्र स्थावर जीव रहते हैं। किन्तु तीनों वात-...यों में स्थावर जीव रहते हैं या नहीं ?

उत्तर—ये तीनों वातवलय वायु के समूह ही हैं। यह वायु ...वयं स्थावर जीव है। अतः तीनों वातवालय में स्थावर और निगोद ...भी रहते हैं।

६. प्रश्न—क्या मोक्ष में निगोदिया जीव हैं ?

उत्तर—मोक्ष में निगोदिया जीव नहीं हैं, क्योंकि मोक्ष मोह के अभाव को (राग, द्वेष के अभाव को) कहते हैं। इसलिए शुद्ध जीव में निगोदिया जीव नहीं हैं।

अब मोक्ष स्थान (यानि शिला) के लिए पूछें। तो मोक्ष स्थान में सूक्ष्म एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिकों, सूक्ष्म एकेन्द्रिय जलकायिक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अग्निकायिक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय वायुकायिक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय वनस्पतिकायिक जीव पूरे लोक में ठसाठस अवस्थित हैं। इसलिये निगोदिया जीवों का मोक्ष स्थान में होना आगम में बतलाया है। सिद्ध लोक (स्थान) में सिद्ध जीव वहाँ पर अपनी परणति के फल के भोक्ता हैं और निगोदिया आदि एकेन्द्रिय जीव अपनी परणति के फल के भोक्ता हैं। स्थान विशेष में न सुख है, न दुःख। सुख दुःख तो आत्मा के परिणाम हैं। इसी कारण ज्ञानी जीव रागादिरूप परणति त्यागकर अपने आत्मा में चित्त को लगाते हैं। सूक्ष्म स्थावर नरक स्वर्ग में भी होते हैं इससे वे नारकी (नरक दुःख भोगने वाले) और देव (स्वर्ग सुख भोगने वाले) नहीं हो जाते वहां भी वे स्थावर (तिर्यंचगति के दुःख भोगने वाले) ही रहते हैं।

७. प्रश्न—ढ़ाई द्वीप के बराबर सिद्ध लोक है। तो क्या सिद्ध शिला के मध्य ऐसा कोई स्थल है। जहां सिद्ध जीव नहीं हैं।

उत्तर—सिद्धक्षेत्र का सब स्थल सिद्ध जीवों से व्याप्त है यह सामान्य कथन है। विशेष रूप से विचार करने पर मध्य का कुछ भाग ऐसा भी है जहां सिद्ध जीव नहीं विराजते। कारण कि मेरु पर्वत की चूलिका और ऋजु विमान के मध्य बालाग्र का अन्तर है, इसलिये ऐसे स्थल में सिद्ध जीवों का नहीं होना स्वाभाविक है। नोट—मुनि महाराज अढ़ाई द्वीप में से सिद्ध होते हैं और मध्यलोक (अढ़ाई द्वीप) में से सीधे जाकर लोक के शिखर पर विराजमान हो जाते हैं। लेकिन मेरु पर्वत की चूलिका बिलकुल तीखी है, उस पर मुनिराज विराजें नहीं, क्योंकि—एक बाल जितना चूलिका और ऋजु विमान के बीच में फरक होने से विराज सकते नहीं और स्वर्गों में मुनि होना व संयम लेना है नहीं, इसलिए मेरु की चूलिका के ऊपर सीधी जगह खाली हो सकती है।

८. प्रश्न—क्या त्रसनाड़ी १४ राजू से कम है? क्योंकि सातवें नरक के नीचे का भाग और सिद्धलोक त्रस जीवों से युक्त कैसे माना जा सकता है?

उत्तर—एक राजू चौड़े चौकोर और चोदह राजू ऊँचे मध्य के लोक भाग को त्रसनाड़ी इसलिये कहते हैं कि इसके भीतर ही त्रस पाये जाते हैं। वैसे तो इसके भीतर और भी ऐसा बहुत बड़ा क्षेत्र है जहां त्रस जीव नहीं पाये जाते हैं। मात्र इसी क्षेत्र के भीतर पाये जाते हैं इसीलिये इसे त्रसनाड़ी कहते हैं।

९. प्रश्न—धर्म द्रव्य के अभाव में सिद्ध भगवान उर्ध्वगमन स्वभाव होते हुए भी लोक से ऊपर नहीं जा सकते, यह तो सिद्ध भगवान की पराधीनता है। अतः सिद्ध भगवान भी कथंचित् पराधीन हैं?

उत्तर—जीवद्रव्य लोक मात्र ही द्रव्य है अतः उसकी लोका-
काश में रहने की ही योग्यता है सो अलोकाकाश में कैसे जा सकता
है पराधीन तो तब कहलाते जब कोई अन्य द्रव्य तो अलोकाकाश
में जाने वाले और सिद्ध जीव न जा पाते।

१०. प्रश्न—परमेश्वर का मुख्य निवास कहां है?

उत्तर—स्वक्षेत्र की अपेक्षा आत्मा में, पर क्षेत्र की अपेक्षा
लोकाकाश में।

११. प्रश्न—एक सिद्ध ठहरे हुए हैं, वहां अन्य सिद्ध भी
अवकाश पा सकते हैं सो कैसे?

उत्तर—सिद्धों के प्रतिजीवी गुणों में एक अवगाहनत्व नामका
गुण होता है। यह आयु कर्म के नाश से प्रगट होता है जिससे
परतन्त्रता का अभाव होता है। इस गुण के कारण जहां एक सिद्ध
ठहरे हुये हैं वहां अन्य सिद्ध भी अवकाश पा सकते हैं, उन्हें बाधा
नहीं होती। जैसा कि पूजा में कहा है—

दोहा—एक माहिं एक राजे, एक माहिं अनेकनो।
इक अनेक की नहीं संख्या, नमहूं सिद्ध निरंजनो॥

जैसे कि सम्मेद शिखर क्षेत्र के मित्रवर कूट से श्री नमिनाथ
जिनेन्द्र आदि मुनि ९ सौ (९००) कोड़ा कोड़ी, एक अरब, सैंतालीस
लाख, सात हजार ९८२ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

१२. प्रश्न—मोक्ष के पद्मासन और खड्गासन दो ही आसन
हैं या तीसरा भी आसन है?

उत्तर—मोक्ष के दो ही आसन हैं, पद्मासन और खड्गासन।
तीसरा आसन नहीं है। उपसर्ग केवली के केवलज्ञान के प्राप्त होने
के पूर्व ही उक्त दो आसनों में से एक आसन नियम से हो जाता है,
क्योंकि उपसर्ग छटवें गुणस्थान तक माना गया है, आगे नहीं।

वहीं तक असाता वेदनीय की उदीरणा होती है, आगे नहीं। जो उपसर्ग केवली होते हैं वे केवल समुद्घात करने के बाद ही मोक्ष के पात्र होते हैं और केवली समुद्घात का होना पद्मासन और खड्गासन इन दोनों आसनों से ही आगम में बतलाया है। इसका विस्तार से वर्णन धवला पुस्तक २ में किया है। इसलिए प्रकृत में ऐसा ही निर्णय करना चाहिए कि मोक्ष की प्राप्ति पद्मासन और खड्गासन इन दो ही आसनों से होती है।

१३. प्रश्न—सिद्ध भगवान् की आत्मा भी क्या नित्य और अनित्य है?

उत्तर—उनका आत्म द्रव्य नित्य है, किन्तु जो शुद्ध पर्याय प्रति समय होती है वह अनित्य ही है। क्योंकि बिना पर्याय के कोई द्रव्य नहीं होता है और पर्याय सदा परिवर्तन शील होती है।

१४. प्रश्न—सिद्धों में चारित्र होता है या नहीं?

उत्तर—चारित्र भी आत्मा का एक गुण है। जिसको घात करने में चारित्र मोहनीय निमित्त बनता है इसी प्रकार की शंका आचार्य विद्यानन्दि ने उठाकर समाधान किया है। प्रश्न था चारित्र को घात करने वाला कौन सा कर्म है? क्या ६वां कर्म है?

तद्रूपावरणं कर्म, नवमं न प्रसज्यते।
चारित्रं मोहनीयस्य, क्षयादेव तदुद्भवात् ॥२६॥

उस चारित्र के अन्तिम स्वभाव को नष्ट करनेवाला आठ कर्मों के अतिरिक्त कोई न्यारा कर्म होगा। इस प्रकार नववें कर्म का प्रसंग नहीं हो पाता। क्योंकि चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से ही उस स्वभाव (चारित्र) की उत्पत्ति हो जाती है। यहां पर चारित्र को घात करने वाला चारित्र मोहनीय कर्म बतलाया है अतः निश्चित हुआ कि उसके अभाव में चारित्र गुण प्रगट हो

ाता है। रत्नत्रय की पूर्णता पर ही मुक्ति होती है। अतः मुक्ति ाप्त करने के समय जब चारित्र था तो सिद्धों में उसका अभाव कैसे हो सकता है ? क्योंकि कोई गुण न बाहर से आता है और न कोई गुण आत्मा से निकलकर नष्ट होता है। कहा भी है—सहभाविनो गुणा। गुण हमेशा द्रव्य के साथ रहते हैं। गुणपर्ययवद् द्रव्यं (तत्त्वार्थ सूत्र)।

१५. प्रश्न—मोक्ष में सिद्ध भगवान् क्या करते हैं ?

उत्तर—कुछ नहीं करते क्योंकि करने का विचार ही आकुलता और अशांति है।

१६. प्रश्न—क्या सिद्ध प्रभु को विचार उठते हैं ? उनकी निर्विकल्पता का क्या अर्थ है ?

उत्तर—विचार द्रव्य मन को निमित्त कर भावमन से उठते हैं। उनके मन का अभाव है, अतः विचार उठना सम्भव नहीं है। वस्तु के भेद प्रभेद जानने को क्षयोपशम ज्ञान में विकल्प उठते हैं। सिद्ध के ज्ञान में सब कुछ झलकता है। अतः जिज्ञासा का भाव समाप्त हो जाने से निर्विकल्प कहलाते हैं।

१७. प्रश्न—सिद्ध भगवान तीन लोक और तीन काल को देखते रहते हैं या अपने स्वभाव में लीन रहते हैं ?

उत्तर—सिद्ध भगवान् तो अपने को देखते जानते हैं किन्तु उनकी आत्मा में इतनी निर्मलता है कि तीन लोक और तीनों काल की वस्तुएँ अपने आप उनके ज्ञान में झलकती रहती हैं।

१८. प्रश्न—सिद्ध भगवान एक ही स्थान पर अनन्त काल किस प्रकार व्यतीत कर रहे हैं ? विविधता के बिना निजानन्द किस प्रकार उनके शाश्वत जीवन में रस की पूर्ति करता रहता

जैसे लड्डू में विष मिलाने वाला हिंसक-दोषी है उसी तरह मिष्ठान्नके लोभ से उसे खाने वाला भी दोष मृत्यु का भागी होता है। जिस तरह शास्त्र में मिथ्या बात मिलाने वाला कपटी है उसी तरह उसे जिनवाणी मानकर चलने वाला भी कुमार्गी है। इसी प्रकार वीतराग निर्ग्रंथ बिम्ब को चन्दन चचना या उस पर पुष्पादि चढ़ाना भी उसे बिगाड़ना है ऐसा करने वाला और तदनुसार उसे मानने वाला दोनों दोषी-अज्ञानी हैं।

जो केशर चर्चित बिम्ब के पूजन में दोष नहीं मानते हैं उनके केसरादि-वर्जित निरावरण के पूजने में दोष आयेगा। ऐसा तो हो नहीं सकता कि—चन्दन चर्चित और अचर्चित दोनों ही वंदनीय हो जाते क्योंकि कभी गोबर और गुड़ (विष और अमृत) एक नहीं हो सकते—दोनों की जाति ही जुदा है।

इसीलिये शास्त्रों में जिनदेव को निर्लेप ही बताया है देखो—
"ज्ञानार्णव"—शुद्ध मत्यन्त निर्लेपं ज्ञानराज प्रतिष्ठितं ॥
" —निर्लेपो निष्कल: शुद्धो ॥ नित्यमपि निरुपलेप: ॥२२३ पु.सि.
महापुराण—निर्लेपो निर्मलोऽचल: ॥

जैन मुनि नग्न ध्यानस्थ योगी की है उसे केशर चर्चना पुष्प लगाना उनके लिये भूषण नहीं दूषण है क्योंकि यह पदविरुद्ध है। पदविरुद्ध क्रिया करना अवर्णवाद है। मुनि के लिये उपसर्ग और अपमान है धर्म विरुद्ध है। फिर भी इसे पुण्योत्पादक मानना अज्ञान है। अगर मूर्ति साधारण मनुष्य (सरागी) की हो तो उसके साथ ऐसी क्रिया (शिंगार) भले कहला सकती है, जिनमूर्ति के साथ नहीं।

जैन बहुतसी प्राचीन मूर्तियों में छत्रचामरादि अष्ट प्रातिहार्य [illegible] नहीं है, अगर ऐसी क्रिया शास्त्र विहित होती तो फिर

मूर्त्ति में ही यानि गले में फूलमाला, चरणों पर पुष्प और टिपकी मूर्त्तिकार जरूर उत्कीर्ण कर देते किन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि वीतराग दिगम्बर मत में ऐसी मान्यता नहीं है। भूगर्भ से अनेक प्राचीन मूर्त्तियां निकलती रहती हैं किसी के ऊपर केशर पुष्पादि का उपयोग भी नहीं मिलता क्योंकि ऐसी आम्नाय ही नहीं है। यह तो आधुनिक लीला है।

मूर्त्ति के चरणों पर चन्दन केशर की टिपकी लगाने वाले कहते हैं कि—इससे प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित मूर्त्ति की पहचान हो जाती है। अथवा मूर्त्ति का अभिषेक हुआ है या नहीं पूजकों को यह भी ज्ञात हो जाता है (टिपकी लगाने का कोई उद्देश्य या लाभ आज तक ढूंढ कर नहीं बता सके तो अब ये नई कल्पनायें ईजाद की गई है किन्तु विचार करने पर यह सब दावा भी मिथ्या ही सिद्ध होता है। क्योंकि फिर तो मूर्त्ति की प्रतिष्ठा कराने की ही जरूरत नहीं रहेगी। टिपकी लगाने से ही जब मूर्त्ति प्रतिष्ठित मान ली जाती है तो फिर लोग प्रतिष्ठा का झंझट-व्ययभार क्यों उठायेंगे ? अप्रतिष्ठित, शास्त्रविरुद्ध, अंगहीन, अयुक्त मूर्त्ति के भी लोग टिपकी लगाकर सहज ही योग्य बनालेंगे। इस प्रकार तो सारी व्यवस्था का ही लोप हो जायेगा। दूसरी बात रही अभिषेक को सो फिर लोग अभिषेक भी क्यों करेंगे ? सीधी टिपकी लगा देंगे। टिपकी लगाने की भी क्या जरूरत ? गत दिवस की लगी हुई ही रहने देंगे।

इस तरह प्रतिष्ठा और अभिषेक क्रियाओं का ही लोप हो जायेगा। गलत चीज को जिस किसी तरह सिद्ध करने का यही परिणाम होता है।

जिन चरणयोः गंधं चर्चयामि। जिन पादयोः पुष्पं समर्पयामि ॥
(जिनेन्द्र के चरणों पर गंधलेपन और पुष्पसमर्पण करता हूं।)

शास्त्रों में ऐसे कथन पाये जाते हैं। इन सप्तमी विभक्ति परक कथनों का अर्थ वीतराग आम्नायानुसार ही करना चाहिये तभी श्रेयस्कर है।

जैसे—"गंगायां घोष:" का अर्थ कोई यह करे कि—गंगा नदी में (गंगा नदी के अंदर) झोपड़ियां होती हैं तो समुचित नहीं है। यहाँ सप्तमी विभक्ति का सामीप्य परक अर्थ करना चाहिये। यानि—"गंगा नदी के समीप (किनारे) झोपड़ियाँ होती हैं" यह अर्थ करना ही संगत होगा। इसी तरह "वटे गाव: सुशेरते" इस सप्तमी विभक्ति परक वाक्य का भी कोई यह अर्थ करे कि—"वड़ के वृक्ष पर गायें सोती हैं" तो असंगत होगा। "वड़ के नीचे (छाया में) गायें सोती हैं" यह अर्थ करना ही सुसंगत होगा।

ठीक इसी प्रकार "जिन चरणयो:" का अर्थ जिन चरणों के ऊपर नहीं किन्तु जिन चरणों के समीप, नीचे, अग्रभूमि में गंधपुष्प चढ़ाना चाहिये। ऐसा अर्थ करना ही समीचीन होगा। यही शास्त्र विहित दि० आम्नाय सम्मत सम्यक् सुसंवद्ध पद्धति है।

चरणों के पास का भाग भी चरण ही कहलाता है। जैसे—सिद्धान्त में तीर्थङ्कर प्रकृति का वंध केवली श्रुत केवली के पादमूल में वताया है। यहाँ "पाद-मूल" शब्द का अर्थ वहां का समीप क्षेत्र है।

"हाथ में कंकण" का अर्थ कुहनी और भुजावाला सारा हाथ नहीं है किन्तु पूंचा मात्र है। इसी तरह "कृष्ण मुख" का अर्थ जीभ दांत वाला अंदर का मुख नहीं है किन्तु गाल, आँख, नाक वाला वाहरी भाग है।

अभयनंदि के लघुस्नपन श्लोक १२ में लिखा है कि—देवों ने मेरु के मस्तक पर भगवान् का अभिषेक किया। इसकी संस्कृत टीका

में लिखा है कि—"उड्ढे गायवरन्तो वत् नमामी गमीवे" अर्थात् वह
के ऊपर नहीं वड़ के समीप गाये चरता है। इसी प्रकार यहां
"मस्तक पर, का अर्थ मस्तक के समीप करना चाहिये।" (क्योंकि-
सुमेरु की चोटी और स्वर्ग के एक बालाग्र मात्र का अंतर है अतः
वहां कोई विराजमान नहीं हो सकता।)

आराधना कथा कोष में—ग्वाले के द्वारा प्रतिमा के चरणों
पर कमल चढ़ाने की बात लिखी है सो वहां भी चरणों की अग्रभूमि
अर्थ लेना ही लाजमी होगा क्योंकि—ग्वाला शूद्र होने से प्रतिमा का
स्पर्श नहीं कर सकता। 'उपरि' का अर्थ भी ठीक ऊपर नहीं होता।
जैसे—"वह कुवे पर सो रहा है" इसका मतलब है कुवे की जगत
पर-पास की भूमि पर सो रहा है। अगर यहां खास ऊपर अर्थ करेंगे
तो फिर मनुष्य ही कुवे में गिर जावेगा।

आदि पुराण पर्व ४२ श्लोक २६ में जिन चरणों से स्पर्शित
माला (शेषा) को मस्तक पर धारण करना बताया है। यहां भी
चरणों के पास की भूमि-चरण चौकी से स्पर्शित अर्थ लेना चाहिए।
अगर ऐसा अर्थ न लिया जावे तो उसी पर्व के श्लोक २७ में मुनियों
को शेषा को भी ग्राह्य लिखा है। तो क्या मुनियों के अंग पर भी
गंधलेपन पुष्प समर्पण होता है? ऐसा मानने पर तो मूलाचारादि
से विरोध आयेगा क्योंकि मूलाचार अधिकार ६ गाथा ७१ की
वसुनंदि टीका में लिखा है कि—पाद-धोवणं-कुंकुमादि रागेण
पादयोनिमली करणं त्याज्यं। अर्थात् चंदन केशर चरणों के
लगाने का त्याग साधु को करना चाहिये। इसी तरह आगे गाथा
२ में स्पष्टतया मूल में 'लेपन' (चन्दन कस्तूरिकादिना शरीरस्य
वंनं) का निषेध किया है। मूलाचार अ० १ गाथा ३०-३१ की
का तथा योगिभक्ति गाथा १८ की टीका भी देखिये जिनमें स्पष्टतया
पनादि का निषेध किया है। लेपनादि नग्न दिगम्बरत्व के भी
द्ध है।

गुणभद्र कृत—बृहत्स्नपन श्लोक ४० में–"क्षिपामि जिन पादयो रूपधरित्रि पुष्पांजलिम्" लिखा है इससे स्पष्ट सिद्ध है कि-पुष्पांजलि जिन चरणों के पास की भूमि में ही चढ़ाई जाती है जिन चरणों से स्पर्शित नहीं की जा सकती है। इसी तरह सोमसेन कृत त्रिवर्णाचार पृष्ठ १०२ में लिखा है कि—"जिनश्री पाद पीठस्थां शेषां शिरसि धारयेत्।" अर्थात् चरण चौकी पर स्थित शेषा–पुष्प-मालादि को शिर पर धारण करना चाहिये।

गुणभद्राचार्य कृत उत्तर पुराण पर्व ७४ श्लोक ३२१-गंधादिभि विभूष्यैतत्पादोपात्त महीतलं ॥ इसमें स्पष्ट मुनि पुंगव महावीर के चरणों की पास की भूमि पर गंध पुष्पादि के चढ़ाने का उल्लेख किया है।

यशस्तिलक चम्पू में बताया है—"पुष्पं त्वदीय चरणार्चन पीठसंगात्" ॥५०७॥ अर्थात्–भगवान् की चरण चौकी पर पुष्प चढ़ाये जाते हैं भगवान् के चरणों पर नहीं। पुष्पों का संसर्ग चरण चौकी से ही है चरणों से नहीं। यहां मूल के "अर्चन–पीठ" (पूजा चौकी) शब्द से इस बात का भी खुलासा होता है कि पूजाद्रव्य चरणों के आगे चौकी पर चढ़ाये जाते हैं और उस चौकी को "अर्चन-पीठ" कहते हैं।

रावजी सखारामजी द्वारा प्रकाशित गजांकुश कृत अभिषेक पाठ के साथ गुरुपूजा छपी है इसमें पुष्पों को मुनि चरणों की पास की भूमि में चढ़ाना लिखा है। निम्नांकित ग्रंथों में भी प्रतिमा के आगे ही चढ़ाना लिखा है—बसवा गुटका (वि० स० १५६३) पत्र ४६ आदि-जिनाग्रे परिपुष्पांजलिंक्षिपेत्।

नित्य पूजापाठ—विधियज्ञ प्रतिज्ञानाय जिन प्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

नित्यमहोद्योत (पृष्ठ २५६) अर्हत्पुरः पुष्पांजलि क्षिपेत्।
" " पृ० २५१ (टीका) त्रैलोक्यनाथ चरणयोविपर्येऽग्रे च
रच्यतेऽयं पुष्पांजलिः।

अभिषेक पाठ (अभयनंदि) पूजां पुरो विरचयामि जिनाधि
पानां॥२६॥

"अभिषेक पाठ संग्रह" पृष्ठ १६६—जिनाग्रे पुष्पांजलिः।

आदि पुराण पर्व २५ श्लोक ५६ में बताया है कि—सिंहासन
भगवान् के स्पर्श से सुशोभित था—सिंहेद्धं विभातीदं तव विष्टर
[illegible]चकैः। रत्नांशुभिर्भवत् स्पर्शान्मुक्त हर्षांकुरैरिव॥ इसी प्रकार
[illegible]र्व २३ श्लोक ६ में लिखा है कि—ऋषभदेव जिस तीन कटनीदार
[illegible]हासन पर विराजमान थे वह उनके चरण स्पर्श से पवित्र था।
[illegible]हाँ स्पर्श शब्द का अर्थ छूना नहीं है किन्तु सन्निकट है क्योंकि
[illegible]वान् सिंहासन से चार अंगुल ऊपर अधर विराजमान रहते हैं
[illegible]से स्पृष्ट नहीं होते। जैसा कि आदि पुराण पर्व २३ श्लोक २६
[illegible]था–त्रिलोक प्रज्ञप्ति गाथा ८६५ अधिकार ४ में लिखा है।

अतः जिन चरणों से स्पृष्ट शेषा का अर्थ चरण चौकी से
स्पृष्ट लेना चाहिए। स्पर्श शब्द से भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए।
यही विवेक और समीचीनता का तकाजा है।

लौकिक में भी रजस्वला का रसोई घर में खाद्य वस्तुओं का
स्पर्श नहीं करते भी प्रवेश कर लेना मात्र ही स्पर्श दोष मान लिया
जाता है। यही बात ब्राह्मण के चौके की है और यही बात शोध के
चौके की है।

इसलिये स्पर्श का अर्थ सभी जगह छूना करना ठीक नहीं है
जहाँ जैसा युक्त और उत्तम हो वैसा ही करना चाहिये। शब्दों के
पीछे लट्ठ लेकर पड़ना कोई बुद्धिमानी नहीं है। शास्त्रों में अनेक

जाता है। रत्नत्रय की पूर्णता पर ही मुक्ति होती है। अत: मुक्ति प्राप्त करने के समय जब चारित्र था तो सिद्धों में उसका अभाव कैसे हो सकता है ? क्योंकि कोई गुण न बाहर से आता है और न कोई गुण आत्मा से निकलकर नष्ट होता है। कहा भी है—सहभाविनो गुणा। गुण हमेशा द्रव्य के साथ रहते हैं। गुणपर्ययवद् द्रव्यं (तत्त्वार्थ सूत्र)।

१५. प्रश्न—मोक्ष में सिद्ध भगवान् क्या करते हैं ?

उत्तर—कुछ नहीं करते क्योंकि करने का विचार ही आकुलता और अशांति है।

१६. प्रश्न—क्या सिद्ध प्रभु को विचार उठते हैं ? उनकी निर्विकल्पता का क्या अर्थ है ?

उत्तर—विचार द्रव्य मन को निमित्त कर भावमन से उठते हैं। उनके मन का अभाव है, अत: विचार उठना सम्भव नहीं है। स्तु के भेद प्रभेद जानने को क्षयोपशम ज्ञान में विकल्प उठते हैं। सिद्ध के ज्ञान में सब कुछ झलकता है। अत: जिज्ञासा का भाव समाप्त हो जाने से निर्विकल्प कहलाते हैं।

१७. प्रश्न—सिद्ध भगवान तीन लोक और तीन काल को खते रहते हैं या अपने स्वभाव में लीन रहते हैं ?

उत्तर—सिद्ध भगवान् तो अपने को देखते जानते हैं किन्तु की आत्मा में इतनी निर्मलता है कि तीन लोक और तीनों काल वस्तुएँ अपने आप उनके ज्ञान में झलकती रहती हैं।

१८. प्रश्न—सिद्ध भगवान एक ही स्थान पर अनन्त काल प्रकार व्यतीत कर रहे हैं ? विविधता के बिना निजानन्द प्रकार उनके शाश्वत जीवन में रस की पूर्ति करता रहता

उत्तर—आत्मा की पूर्ण स्वाधीनता को मोक्ष कहते हैं।

२२. प्रश्न—मोक्ष क्या है ?

उत्तर—जहां यह जीव अढ़ाई द्वीप में सर्वथा कर्मों से रहित हो जाता है। आशा तृष्णा का बिलकुल अभाव हो जाता है, वहाँ ही वही मोक्ष है। मोक्ष किसी स्थान विशेष का नाम नहीं है। अगर मोक्ष किसी स्थान का नाम हो तो फिर निगोदिया जीव वहां जन्म मरण से दुःखी उस स्थान में क्यों होवे। जीव का उर्ध्व गमन करने का स्वभाव है, इसलिये वह कर्मों से रहित होकर लोक के शिखर पर जाकर ठहर जाता है, वहां से आगे वह धर्मास्तिकाय का अभाव होने से आगे नहीं जा सकता इसलिए उस स्थान को सिद्ध स्थान कहा जाता है। मोक्ष तो इस मध्यलोक में ही हो जाता है फिर जीव एक ही समय में सिद्ध शिला पर पहुँच जाता है जहाँ वह सदाकाल रहता है।

२३. प्रश्न—मोक्ष के क्या क्या नाम हैं ?

उत्तर—मोक्ष के नाम—सिद्धक्षेत्र, शिवथल, अविचलस्थान, मोक्ष, मुक्ति, शिव, पंचमगति, निर्वाण ये मोक्ष के नाम हैं।

२४. प्रश्न—क्या हमें भगवान् मोक्ष में पहुँचा सकते हैं ?

उत्तर—भगवान् ने मोक्ष का मार्ग बतलाया है, जो उस पर चलेगा वह मोक्ष पहुँच जायेगा।

२५. प्रश्न—मोक्ष का सच्चा मार्ग क्या है ?

उत्तर—निश्चय रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः)। श्री पद्मनंदि मुनि एकत्वसप्तति में कहते हैं :—

दर्शनं निश्चयः पुंसि, बोधस्तद्बोध इष्यते।
स्थितिरत्रैव चारित्रमितियोगः शिवाश्रयः ॥१४॥

अर्थ—शुद्धात्मा का निश्चय, सम्यग्दर्शन है, शुद्धात्मा सम्यग्ज्ञान है, शुद्धात्मा में स्थिति सम्यक्चारित्र है तीनों ा ही मोक्ष का मार्ग है।

२६. प्रश्न—मोक्षमार्ग एक ही है या अधिक है ?

उत्तर—(१) मोक्षमार्ग एक ही है और वह निश्चय सम्य- ज्ञानचारित्र की एकता ही है।

(२) श्री प्रवचनसार गाथा १९९ की टीका में कहा है— "समस्त सामान्य चरम शरीरी तीर्थंकर और अचरम शरीरी मुमुक्षु इसी यथोक्त शुद्धात्म तत्त्व प्रवृत्ति लक्षण विधि द्वारा प्रवर्तमान मोक्षमार्ग को प्राप्त करके सिद्ध हुए हैं, परन्तु ऐसा नहीं है कि अन्य विधिसे भी हुए हों, इसलिये निश्चित होता है कि मात्र यह एक ही मोक्ष का मार्ग है, अन्य नहीं है।"

(३) श्री प्रवचनसार गाथा ८२ तथा उसकी टीका में कहा है कि—"सर्व अरिहन्त भगवन्त उसी विधि से कर्मांशोंका क्षय करके तथा अन्य को भी उसी प्रकार उपदेश देकर मोक्षको प्राप्त हुए हैं।"

२७. प्रश्न—क्या पहले निश्चय मोक्ष मार्ग होता है या व्यवहार ?

उत्तर—दोनों मोक्ष मार्ग एक साथ होते हैं। क्योंकि दोनों नय वास्तव में एक साथ होते हैं। कहा भी है-निरपेक्षा: नया: मिथ्या: सापेक्षा: वस्तु तेऽर्थकृत्। न. च.। कोई भी अकेला नय मिथ्या होता है। सापेक्ष नय ही सम्यक् होते हैं। इसलिये यह कहना कि पहले व्यवहार मोक्षमार्ग होता है पश्चात् निश्चय मोक्षमार्ग व्यर्थ है। निश्चय-शून्य व्यवहार मात्र व्यवहाराभास है। इसी प्रकार व्यवहार शून्य निश्चय मात्र निश्चयाभास है। "जब रत्नत्रय आत्मा में प्राप्त होता है तब ऐसा अखंड आत्मा निश्चय मोक्षमार्ग है। दर्शनज्ञान

चारित्र ये तीन भेद व्यवहार से ही कहे जाते हैं। निश्चय से ये तीनों एक ग्रात्मा ही है।"—मोक्षमार्ग ३-१॥

२८. प्रश्न—मोक्षमार्ग कौन से गुणस्थान से प्रारम्भ होता है।

उत्तर—मोक्षमार्ग चौथे गुणस्थान से प्रारम्भ होता है।

२९. प्रश्न—ग्राजकल कोई मोक्ष जा सकता है ?

उत्तर—विदेह क्षेत्र से मोक्ष जा सकते हैं।

३०. प्रश्न—क्या पंचमकाल में जीव मोक्ष जा सकता है ?

उत्तर—इसी भव मे मोक्ष जाने की सामर्थ्य वाले जीव तो यहाँ उत्पन्न नहीं होते किन्तु सम्यग्दर्शन प्राप्त करके मोक्ष का मार्ग इस काल में बना सकते हैं। मोक्ष चौथे काल में यहां से होता है।

३१. प्रश्न—पंचम काल में जीव मोक्ष क्यों नहीं जा सकता है ?

उत्तर—इस काल में ऐसे हीन पुरुपार्थी जीव ही जन्म लेते हैं जो मोक्ष जाने का पुरुपार्थ नहीं कर पाते। इस काल में मोक्ष का मार्ग बना सकते हैं।

३२. प्रश्न—पांचवें काल में जब कोई मोक्ष नहीं जा सकता, किन्तु तीन मुनि तो मोक्ष गये हैं। यह कैसे ?

उत्तर—चतुर्थ काल में जन्म लेने वाले हुण्डावसर्पिणी काल के दोष से पंचमकाल में मोक्ष गए हैं। दूसरे पंचमकाल में कोई मोक्ष नहीं जाता है।

३३. प्रश्न—क्या सभी जीव मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं या नहीं ?

उत्तर—भव्य जीव मोक्ष जा सकते हैं, ग्रभव्य नहीं क्योंकि उसमें ऐसी योग्यता नहीं। जैसे मूंग में कोई-कोई एक मूंगड़ी होती

है, उसे कितनी आंच लगाओ किन्तु वह सीझती नहीं। क्योंकि उसमें ऐसी ही योग्यता है। जैसे बांझ स्त्री के पुत्र पैदा करने की शक्ति नहीं होती।

३४. प्रश्न—जब नित्य निगोद से निरंतर छः मास आठ समय में ६०८ जीव निकलते रहते हैं तथा कोई जीव लौटकर नित्य निगोद में आ नहीं सकता, तब कभी न कभी तो नित्य निगोद खाली हो जाना चाहिये ?

उत्तर—जब एक निगोद के शरीर में ही अक्षय अनंत निगोद रहते हैं और ऐसे ही निगोदियों से तीन लोक ठसाठस भरे हुए हैं तब खाली होने का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर अक्षय अनंत का अर्थ ही समाप्त न होने वाला है।

३५. प्रश्न—क्या म्लेच्छ उसी भव से मोक्ष जा सकता है ?

उत्तर—कर्म म्लेच्छ पाप कार्य छोड़कर उसी भव से मोक्ष जा सकते हैं, जैसे अंजन चोर। जाति म्लेच्छ उसी भव से मोक्ष नहीं जा सकते हैं।

३६. प्रश्न—कौन से व्रत करने से मोक्ष मिलता है ?

उत्तर—अणुव्रत महाव्रत से शुभाश्रव होता है और निश्चय रत्नत्रय से मोक्षमार्ग शुरू होकर उसकी पूर्णता करने पर मोक्ष मिलता है।

३७. प्रश्न—मोक्षनगर की यात्रा करने वाले जीवों को मोक्ष कलेवा क्या है ?

उत्तर—जब बीच में कोई पड़ाव ही नहीं पड़ता, तब कलेवा क्या आवश्यकता ? यहां से दूसरे समय में मोक्ष वहां अनन्त का भोजन निरन्तर वे करते ही हैं।

★

सातवां अधिकार

१. प्रश्न—भारत में जैन तीर्थों की संख्या कितनी है ?

उत्तर—जैन तीर्थों की संख्या २०० के करीब है।

२. प्रश्न—क्या सभी तीर्थक्षेत्र प्राचीन काल से, उसी अवस्था में अभी तक स्थित हैं ?

उत्तर—पर्वतों के आकार प्रकार बदल जाते हैं, स्थान वे ही हैं।

३. प्रश्न—भारतवर्ष के अतिरिक्त भी किसी देश में कोई जैन तीर्थ स्थान है ?

उत्तर—तिब्बत में कैलाश पर्वत है जो अब चीन के अधिकार में चला गया है।

४. प्रश्न—भारत में सबसे अधिक जैनतीर्थ कौन से प्रान्त में हैं ?

उत्तर—मध्य प्रदेश में।

५. प्रश्न—भारत में सबसे बड़ा जैनतीर्थ कौन-सा है ?

उत्तर—सम्मेद शिखरजी।

६. प्रश्न—कैलाश पर्वत तिब्बत में या तिब्बत के पास में कहा जाता है। तो वहां भरत चक्रवर्ती के बनाये हुए ७२ रत्नमय जिनमंदिर किसी के देखने में क्यों नहीं आये ? वहां मनुष्य जा सकता है या नहीं ?

उत्तर—ये कृत्रिम (बनाये हुए) मंदिर थे, वे अब तक थोड़े ही रह सकते हैं। चौथे काल के प्रारम्भ में वे मंदिर बने थे जबकि चौथा काल ४२ हज़ार वर्ष कम १ कोड़ा कोड़ी सागर का है। अयोध्या की रचना इन्द्र ने की थी। आज वह पुरानी अयोध्या कहां है ? ये कृत्रिम रचनायें समय के साथ नष्ट हो जाती हैं।

७. प्रश्न—क्या वर्तमान अयोध्या नगरी ही आदिनाथ की जन्मनगरी है?

उत्तर—स्थान तो वही है। वर्तमान नगरी की रचना नवीन है।

८. प्रश्न—ऋषभनाथ का तप कल्याणक द्वारका नगरी में लिखा है, जबकि द्वारका नगरी की रचना तीर्थंकर नेमिनाथ के समय में हुई थी।

उत्तर—जिस नगरी में तीर्थंकर जन्म लेते हैं, उस नगरी को कुबेर सुन्दर बना देता है। नगरी तो पुरानी होती है।

९. प्रश्न—भरत और बाहुबली की निर्वाण भूमि कौनसी है?

उत्तर—अन्त में कैलाश पर पहुँचने का उल्लेख है, अतः कैलाश पर्वत से ही मुक्ति में गये हैं। शास्त्रों में इनकी निर्वाण भूमि का उल्लेख नहीं है।

१०. प्रश्न—कैलाश पर्वत पर स्थित बद्रीनारायण के मन्दिर की मूर्ति क्या आदिनाथ की है?

उत्तर—कैलाश तिब्बत के पास बताते हैं जबकि बद्रीनारायण मन्दिर हिमालय की उपत्यकाओं में है। प्रत्यक्षदर्शी बद्रीनारायण प्रतिमा को भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा बतलाते हैं।

११. प्रश्न—क्या महादेवजी और भगवान् आदिनाथ एक ही थे?

उत्तर—इतिहास और गुण की अपेक्षा तो बिलकुल भिन्न थे। किन्तु साहित्य की अलंकारिक दृष्टि से ऐसा लगता है कि जैसे आदिनाथ को ही उपमा अलंकार देकर महादेवजी का वर्णन किया हो। जैसे जटाजूट, बैल आदि वर्णन आदिनाथ का ही अलंकारिक वर्णन है।

१२. प्रश्न—तीर्थ यात्रा करने में क्या लाभ है, क्योंकि जो भगवान् की मूर्ति हमारे नगर में भी होती है फिर इतना भ्रमण क्यों ?

उत्तर—तीर्थ यात्रा करने के लिए मनुष्य घर गृहस्थी की झंझटें छोड़कर निराकुल होकर जाता है, तथा उस पवित्र भूमि में जाकर उन उन महापुरुषों का स्मरण करने से परिणामों में विशेष निर्मलता आती है। इसी से तीर्थ यात्रा का विशेष लाभ प्राप्त होता है।

१३. प्रश्न—सम्मेद शिखरजी की एक वंदना से कितना पुण्य मिलता है ?

उत्तर—यदि पवित्र भावों से मुक्तगामी जीवों के गुणों का चिंतन कर उनके जैसे गुणों को प्रगट करने का प्रयत्न करे तो अतिशय पुण्य बंध होता ही है कभी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होकर निकट भविष्य में मुक्ति भी प्राप्त हो सकती है।

निर्वाण क्षेत्र पूजा में पं० द्यानतरायजी ने लिखा है—

एकबार वंदे जो कोई, तांहि नरक पशुगति नहीं होई ॥

"एक वार" की जगह "भाव सहित" भी लिखा है। अर्थात् एक वार भी भाव सहित जो कोई सम्मेद शिखरजी को वंदना करता है उसे नरक और पशुगति प्राप्त नहीं होती (देवगति या मनुष्य गति ही मिलती है।)

श्री जिन-पूजा विषयक प्रश्नोत्तर
(सम्यक् पूजा विधि)

१. प्रश्न—क्षीर समुद्र के जल से ही देवों ने जन्माभिषेक क्यों किया ?

उत्तर—अन्य कूप तड़ाग सरिता सागर आदि के जलों में त्रसजीव होने से उसे अभिषेक के योग्य नहीं समझा गया। क्षीर समुद्र के जल में जलचर जीवों का अभाव होने से (देखो-नेमिचन्द्राचार्यकृत "तिलोयसार" गाथा ३२०) उसे अभिषेक योग्य समझा गया न कि वह जल क्षीरमयी होने से। वह जल न तो क्षीर वर्ण का था और न क्षीर ही था अगर क्षीर (दुग्ध) ही होता तो उसे जल शब्द से नहीं लिखते उसका स्वाद सिर्फ क्षीर जैसा होने से उसकी संज्ञा क्षीर कहलाती थी (वैसे कोषों में क्षीर का अर्थ जल भी है देखो अमरकोष—"नीर क्षीराम्बुशंवरम्।"

त्रसजीवों का अभाव तो मनुष्य क्षेत्र से बाहर के दूसरे निकटवर्ती तीसरे चौथे समुद्रों के जल में भी है, उन्हीं का जल अभिषेक के अर्थ क्यों नहीं लाये ? दूरवर्ती पंचम क्षीरसमुद्र का क्यों लाये ? इसका उत्तर यह है कि—देवों की संख्या इतनी अधिक थी कि—उनकी पंक्ति क्षीर समुद्र तक ही समा सकती थी कम क्षेत्र में नहीं। इसलिये जल लाने का विस्तार क्षीर समुद्र तक करना योग्य समझा गया।

यदि कहो कि—देवगण विक्रिया से समा सकने योग्य अपना अपना छोटा शरीर कर सकते थे किन्तु वैसा करने से शोभाहीनता आती थी। शरीर छोटा और कलश बड़े ऐसा दृश्य भद्दा मालूम देता। इस पर भी यह कहें कि—कलशों को भी छोटे कर लेते तो ऐसा करने पर पर्याप्त अभिषेक नहीं होता।

इसी तरह शतरंज, गंजीफा (ताश) नक्शे आदि में भी स्थापना निक्षेप का व्यवहार होता है। स्थापित वस्तु चाहे सजीव हो चाहे निर्जीव तदाकार (उसी आकार की) हो चाहे अतदाकार (भिन्न आकार की) सब स्थापना निक्षेप में आ जाती है।

समक्ष में १–२ तीर्थंकरों की ही मूर्ति होते हुए भी हम अन्य तीर्थंकरों सिद्ध, बाहुबली, सप्तर्षि, निर्वाण क्षेत्र, दशलक्षण, रत्नत्रय, अकृत्रिम चैत्यादि की पूजा कर लेते हैं उसी तरह नैवेद्य पुष्पादि का उच्चारण करके भी उनकी जगह प्राशुक द्रव्य चढ़ा देना अनुचित और असत्य नहीं है बल्कि ज्यादा समुचित और सम्यक् है।

इससे सिद्ध है कि—शब्दों पर ज्यादा जोर देना व्यर्थ है। शब्द मुख्य नहीं है भाव ही मुख्य और फलदायी है शब्द तो सिर्फ माध्यम है। इसी तरह संकल्प विचार ही मुख्य है वस्तु मुख्य नहीं है इसीलिये वस्तु के अभाव में (या विपरीत वस्तु के होते) भी कोरे संकल्प–भाव से ही शुभाशुभ कर्मों का बंध हो जाता है।

एक बात और है—शब्द चाहे कुछ भी हो अर्थ उनसे सदा उच्च एवं आदर्शमय ही ग्रहण करना चाहिए। शास्त्रों में "अजैर्य-ष्टव्यम्" पर कथा देते हुए बताया है कि–जो मांस लोलुपी (हिंसक) थे उन्होंने तो इस का अर्थ यह किया कि—बकरों, पशुओं से यानि उनकी बलि देकर यज्ञ–पूजा करना चाहिये और जो अहिंसक थे उन्होंने यह अर्थ किया कि—अज यानि जो न उगे ऐसा ३ वर्ष पुराना जौ आदि धान्य ही उससे यज्ञ–पूजा करना चाहिए। इसके निर्णय के लिये जब सत्यवादी राजा वसु के पास गए तो वह गुरु पत्नी के बहकावे में आ गया और उसने गुरु पुत्र का पक्ष ले लिया इससे वह सिंहासन समेत पाताल में धंस गया और मर कर नरक गया तथा अहिंसक नारद लोक में प्रशंसित हो स्वर्ग में गया। (यह कथा वैदिकों के महाभारत में भी पाई जाती है।)

शास्त्रों में अभिधेय (शब्दानुसार) अर्थ की दुहाई देकर अभिप्राय के लोप करने को भी असत्य माना है। अतः शब्द और अर्थ से भी ज्यादा वजनदार–महत्त्वपूर्ण अभिप्राय–आशय है उसी पर लक्ष्य रखना चाहिए।

शब्द ज्यादा वकत नहीं रखते हमारी नियत ज्यादा वकत रखती है अतः शब्दों की शरण न लेकर उनके सम्यक् अभिप्राय का आश्रय लेना ही श्रेयस्कर है। शब्द रूपी नौकर की क्या सेवा करनी अभिप्राय रूपी ठाकुर को सेवा करनी चाहिये तभी मेवा मिलेगी।

शास्त्रों में भावसत्य के लिए लिखा है—जो वचन हिंसा जनक हों सत्य होते भी वे असत्य हैं। और जिनसे किसी की रक्षा हो वे असत्य होते भी सत्य हैं। यह जैनी नीति है।

द्रव्य से भाव महान् हैं। द्रव्य शरीर मात्र मुर्दा है और भाव प्राणमय आत्मा है। इस दृष्टि से हम सोचें तो पीले चावलों को पुष्प, चटकों (गिरि) को नैवेद्य तथा पीली चटकों को दीप इत्यादि कहना मात्र भाव सत्यरूप ही है।

अशुद्ध–अप्रासुक द्रव्यों को तो धर्म कार्य में कभी ग्राह्य ही नहीं माना है। शुद्ध प्रासुक द्रव्यों का ग्रहण ही उपयुक्त माना है, साथ ही भावों की शुद्धि पर विशेष जोर दिया है। इसीलिए पूजा के प्रारम्भ में सूचित किया है—

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं।
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः॥

[illegible]

[illegible]

उत्तर—वनस्पति कायिक सचित्त पुष्पादि अनेक त्रस जीवों से भरे होते हैं तथा बहुत से अनंत कायिक भी होते हैं अतः उनका स्पर्श ही महान् दोषास्पद बताया है फिर उनका चढ़ाना तो किसी तरह समुचित ही नहीं है। पवित्र निष्कलंक प्रभु को प्राशुक निर्दोष वस्तु ही चढ़ाई जा सकती है, सदोष अप्रासुक अशुद्ध वस्तु नहीं। धर्मस्थान में तो इस का खास खयाल रखना चाहिये।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार की "देवाधि देव चरणे परिचरणं" कारिका में जिनपूजा को वैयावृत्य के अन्तर्गत बताया है और वैयावृत्य के अतिचारों में "हरित पिधान निधाने" कारिका में हरित से स्पृष्ट वस्तु को देना अतिचार बताया है। ऐसी हालत में साक्षात् हरित पुष्प फलादि को जिन पूजा में चढ़ाना अतिचार ही नहीं स्पष्ट अनाचार सिद्ध होता है।

पुष्पादि सरागता के द्योतक हैं अतः वीतराग प्रभु के लिये वे किसी तरह उपयुक्त नहीं हैं। इसी से एकीभाव स्तोत्र में कहा है कि—तर्तिक भूषा वसन कुसुमैं किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः॥ हे भगवन् आभूषण, वस्त्र, पुष्प और शस्त्र ये सब आपके लिए प्रयोजनहीन हैं।

वसुनंदि श्रावकाचार गाथा ५८ में लिखा है कि—पुष्प नित्य त्रस जीवों से भरे रहते हैं। श्रावकाचारों में बताया है कि—सब जाति के पुष्प हेय हैं।

यहाँ "सावद्यलेशो बहु पुण्यराशी" का अभिप्राय यह है कि—थोड़े स्थावर जीवों की विराधना क्षन्तव्य है। किन्तु अनंत कायिक स्थावर और त्रसजीवों की विराधना जो पुष्पों में होती है वह क्षन्तव्य नहीं है, वैध नहीं है। देखो—"भव्यजन कंठाभरण" श्लोक ८३–८४॥

बहुत से भाई यह समझते हैं कि—५वीं सचित्त त्याग प्रतिमा वाले के लिये ही प्राशुक अचित्त पुष्पादि से पूजन का नियम है अन्य के लिए नहीं।" उनकी ऐसी समझ शास्त्र-सम्मत नहीं है।

पुरुपार्थ सिद्ध्युपाय में प्रोपधोपवास के वर्णन में प्रासुक द्रव्यों से ही पूजा करने का खास विधान किया है। प्रोपधप्रतिमा चौथी प्रतिमा है। यह सचित्त त्याग प्रतिमा से पूर्व की है। प्रासुक द्रव्यों से पूजा का विधान प्रोपध प्रतिमा वाले के लिए ही नहीं किन्तु उससे भी नीचे सामान्य प्रोपध करने वाले के लिए भी किया है।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि—सामान्य पूजक तक के लिए मात्र प्रासुक द्रव्य से ही पूजन का विधान है। किन्तु आज तो व्रती ही नहीं प्रतिमाधारी तक वह भी ब्रह्मचारी जो सातवीं प्रतिमा के धारी हैं सचित्त द्रव्यों से पूजा करते, कराते हैं।

यह कहाँ तक शास्त्र सम्मत है विवेकी विद्वान् विचार करें। मूलाचार (चतुर्विशतिस्तव) में "उसहादि जिरण वराणं" गाथा की वसुनंदि टीका में सामान्य तौर पर सभी के लिए प्रासुक द्रव्यों से पूजा करना बताया है।

पं० जौहरीलालजी कृत बीस विहरमान पूजा में भी प्रासुक फूल फल चढ़ाने का ही निरुपण है।

पं० आशाधरजी ने अपने टीका ग्रंथों में अनेक जगह पीत-तंदुलों को पुष्प संज्ञा दी है। पुण्याश्रव कथाकोश पृ० १२ में "सुवर्ण वर्ण तंडुलान् पुष्पांजलि संकल्पेन क्षिपेत्" (पीले चांवलों को पुष्प मानकर चढ़ावें) ऐसा लिखा है।

पद्म चरित (रविषेण कृत) भाग २ पृष्ठ ६७ (ज्ञानपीठ प्रकाशन) में भी इसी तरह भाव पुष्पों (पीत तन्दुल, स्वर्ण रजत कागज आदि के कृत्रिम पुष्प) का वर्णन किया है।

प्रतिष्ठासारोद्धार (आशाधर) पृ० ६६-कुंकुमाक्त पुष्पाक्षतं।

"व्रत तिथि निर्णय" में भी ऐसा ही उल्लेख है। देखो पृष्ठ २६८

भगवान् के विहार काल में उनके चरणों के नीचे देवगण जो कमल रचते हैं वे स्वर्ण के होते हैं वनस्पति कायिक नहीं। देखो—

भक्तामर स्तोत्र—उन्निद्र हेमनवपंकज पुंज कांति ॥३६॥
चैत्यभक्ति—जयति भगवान्हेमाम्भोज प्रचार विजृंभिता ॥
यशस्तिलक चंपू—हेमाम्बुजान्यथ जिनस्यपदेऽर्पयामि ॥५०५॥

चैत्यभक्ति के प्राचीन अचलिका पाठ में भी "दिव्वेण गंधेण दिव्वेण पुप्फेण" में दिव्य शब्द इसी प्रासुक अर्थ का द्योतक है।

देवगण जो कल्पवृक्षों के पुष्पों से जिनपूजा करते हैं वे कल्पवृक्ष भी वनस्पति कायिक नहीं हैं वे पृथ्वी के सार हैं—मृणमयी हैं देखो—तिलोय पण्णत्ती गाथा ३५४ अधिकार ४।

लवंग को भी 'देवपुष्प' कहते हैं। ये प्रासुक हैं अतः पुष्प की जगह लिए जा सकते हैं।

इसी पूर्व परम्परानुसार तेरापंथ में असली पुष्पों की जगह नकली पुष्पोंको समीचीन माना है क्योंकि वे हिंसाजन्यता से दूर हैं।

सवाल असली नकली का नहीं है प्रासुकता—अहिंसकता का है। अगर असली में भी हिंसा है तो वह त्याज्य है और नकली भी हिंसा से रहित है तो वह ग्राह्य है। यही जिनधर्म का सार है और यही विवेक की कसौटी है।

जब हमारी आराध्य मूर्त्ति ही संकल्पित-नकली है तो पूजा द्रव्यों के नकली होने में आपत्ति करना व्यर्थ है।

इसके सिवा जबकि असली चढ़ाने में कोई लाभ नहीं उल्टा नुकसान है। और नकली चढ़ाने में कोई नुकसान नहीं उल्टा लाभ है और साथ ही वह आगम सम्मत एवं निर्दोष निर्विवाद है तो उसी का आश्रय लेना समुपयुक्त है।

पेट में ही क्यों न पहुँचाया जाय। फिर तो जल नैवेद्य और फल को भी मुंह में ही क्यों न दिया जाय? अब इन तीनों को प्रतिमा के आगे चढ़ाया जाता है तो चन्दन पुष्पों को भी प्रतिमा के आगे चढ़ाया जाना चाहिये क्योंकि प्रतिमा वीतराग निर्ग्रंथ अरहंतदेव की है। चन्दन पुष्प को (चाहे वो चांवल ही हों) उनके अंग पर चढ़ाना उन्हें सराग सग्रंथ संयोगी बनाना है। इस तरह देखा चढ़ाकर करके खुद भी दोषी बनना है और प्रतिमा को भी अपूज्य करना है। इन प्रकार के कृत्य को मंगल बताना यह और भी ज्यादा मिथ्यात्व है। इसी से कहा है कि—

वीतराग देवजू के बिंब पै लगावे कोऊ,
कुंकुमादि लेप अरु केवड़ा विकार है।
तातें जिनबिंब पाय दोष न लगावे कोऊ,
दोष जो लगावे ताके कुबुद्धि अपार है।।

काल दोष पाय जिन बिंबकूं पहनाय माल,
केवड़ा अगर धरि लेपे गंध सेती जू।
ऐसी विधि परपंच रचि के सराग चिह्न,
ताकूं पूजि मूढ़ कहे हम समकती जू।।

लेप पुष्प अरु केवड़ा कामीजन के होय।
प्रतिमा के दूषण लगे, पूजनीक नहीं होय।।

जिन प्रतिमा है वीतरागमय, अन्तर बाहर शुद्ध।
पुष्प लेप अरु केवड़ा, ये प्रत्यक्ष विरुद्ध।।

कोई भी द्रव्य जिन चरणों पर चढ़ाना निषिद्ध है, प्रतिमा के आगे ही चढ़ाना चाहिये। वनस्पति कायिक पुष्पादि तो चरणों पर ही क्या प्रतिमा के आगे भी नहीं चढ़ाने चाहिए।

जैसे लड्डू में विप मिलाने वाला हिंसक–दोपी है उसी तरह मिष्ठान्नके लोभ से उसे खाने वाला भी दोप मृत्यु का भागी होता है। जिस तरह शास्त्र में मिथ्या वात मिलाने वाला कपटी है उसी तरह उसे जिनवाणी मानकर चलने वाला भी कुमार्गी है। इसी प्रकार वीतराग निर्ग्रंथ विम्ब को चन्दन चचना या उस पर पुष्पादि चढ़ाना भी उसे विगाड़ना है ऐसा करने वाला और तदनुसार उसे मानने वाला दोनों दोपी–अज्ञानी हैं।

जो केशर चर्चित विम्ब के पूजन में दोप नहीं मानते हैं उनके केसरादि–वर्जित निरावरण के पूजने में दोप आयेगा। ऐसा तो हो नहीं सकता कि—चन्दन चर्चित और अचर्चित दोनों ही वंदनीय हो जावे क्योंकि कभी गोवर और गुड़ (विप और अमृत) एक नहीं हो सकते—दोनों की जाति ही जुदा है।

इसीलिये शास्त्रों में जिनदेव को निर्लेप ही वताया है देखो—
"ज्ञानार्णव"—शुद्ध मत्यन्त निर्लेपं ज्ञानराज प्रतिष्ठितं ॥
" —निर्लेपो निष्कल: शुद्धो ॥ नित्यमपि निरुपलेप: ॥२२३ पु.सि.
महापुराण—निर्लेपो निर्मलोऽचल: ॥

जैन मूर्ति नग्न ध्यानस्थ योगी की है उसे केशर चर्चना पुष्प लगाना उसके लिये भूपण नहीं दूपण है क्योंकि यह पदविरुद्ध है। पदविरुद्ध क्रिया करना अवर्णवाद है। मूर्त्ति के लिये उपसर्ग और अंतराय है धर्म–विरुद्ध है। फिर भी इसे पुण्योत्पादक मानना अज्ञता है। अगर मूर्त्ति साधारण मनुष्य (सरागी) की हो तो उसके साथ ऐसी क्रिया (खिलवाड़) संगत कहला सकती है, जिन-मूर्ति के साथ नहीं।

जैसे वहुतसी प्राचीन मूर्त्तियों में छत्रत्रयादि अष्ट प्रातिहार्य उत्कीर्ण रहते हैं, अगर ऐसी क्रिया शास्त्र विहित होती तो फिर

मूर्ति में ही यानि गले में फूलमाला, चरणों पर पुष्प और टिपकी मूर्तिकार जरूर उत्कीर्ण कर देते किन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि वीतराग दिगम्बर मत में ऐसी मान्यता नहीं है। भूगर्भ से अनेक प्राचीन मूर्तियां निकलती रहती हैं किसी के ऊपर केशर पुष्पादि का उपयोग भी नहीं मिलता क्योंकि ऐसी ग्राम्नाय ही नहीं है। यह तो ग्राधुनिक होता है।

मूर्ति के चरणों पर चन्दन केशर की टिपकी लगाने वाले कहते हैं कि—इससे प्रतिष्ठित ग्रप्रतिष्ठित मूर्ति की पहचान हो जाती है। ग्रथवा मूर्ति का ग्रभिषेक हुआ है या नहीं पूजकों को यह भी ज्ञात हो जाता है (टिपकी लगाने का कोई उद्देश्य या लाभ आज तक ढूंढ कर नहीं बता सके तो ग्रब ये नई कल्पनायें ईजाद की गई है किन्तु विचार करने पर यह सब दावा भी मिथ्या ही सिद्ध होता है। क्योंकि फिर तो मूर्ति की प्रतिष्ठा कराने की ही जरूरत नहीं रहेगी। टिपकी लगाने से ही जब मूर्ति प्रतिष्ठित मान ली जाती है तो फिर लोग प्रतिष्ठा का झंझट-व्ययभार क्यों उठायेंगे ? ग्रप्रतिष्ठित, शास्त्रविरुद्ध, ग्रंगहीन, ग्रयुक्त मूर्ति के भी लोग टिपकी लगाकर सहज ही योग्य बनालेंगे। इस प्रकार तो सारी व्यवस्था का ही लोप हो जायेगा। दूसरी बात रही ग्रभिषेक की तो फिर लोग ग्रभिषेक भी क्यों करेंगे ? सीधी टिपकी लगा देंगे। टिपकी लगाने की भी क्या जरूरत ? गत दिवस की लगी हुई ही रहने देंगे।

इस तरह प्रतिष्ठा और ग्रभिषेक क्रियाग्रों का ही लोप हो जायेगा। गलत चीज को जिस किसी तरह सिद्ध करने का यही परिणाम होता है।

जिन चरणयोः गंधं चर्चयामि। जिन पादयोः पुष्पं समर्पयामि ॥
(जिनेन्द्र के चरणों पर गंधलेपन और पुष्पसमर्पण करता हूं।)

शास्त्रों में ऐसे कथन पाये जाते हैं। इन सप्तमी विभक्ति परक कथनों का अर्थ वीतराग आम्नायानुसार ही करना चाहिये तभी श्रेयस्कर है।

जैसे—"गंगायां घोष:" का अर्थ कोई यह करे कि—गंगा नदी में (गंगा नदी के अंदर) झोपड़ियां होती हैं तो समुचित नहीं है। यहाँ सप्तमी विभक्ति का सामीप्य परक अर्थ करना चाहिये। यानि—"गंगा नदी के समीप (किनारे) झोपड़ियाँ होती हैं" यह अर्थ करना ही संगत होगा। इसी तरह "वटे गाव: सुशेरते" इस सप्तमी विभक्ति परक वाक्य का भी कोई यह अर्थ करे कि—"वड़ के वृक्ष पर गायें सोती हैं" तो असंगत होगा। "वड़ के नीचे (छाया में) गायें सोती हैं" यह अर्थ करना ही सुसंगत होगा।

ठीक इसी प्रकार "जिन चरणयो:" का अर्थ जिन चरणों के ऊपर नहीं किन्तु जिन चरणों के समीप, नीचे, अग्रभूमि में गंधपुष्प चढ़ाना चाहिये। ऐसा अर्थ करना ही समीचीन होगा। यही शास्त्र विहित दि० आम्नाय सम्मत सम्यक् सुसंवद्ध पद्धति है।

चरणों के पास का भाग भी चरण ही कहलाता है। जैसे—सिद्धान्त में तीर्थङ्कर प्रकृति का वंध केवली श्रुत केवली के पादमूल में वताया है। यहाँ "पाद-मूल" शब्द का अर्थ वहां का समीप क्षेत्र है।

"हाथ में कंकण" का अर्थ कुहनी और भुजावाला सारा हाथ नहीं है किन्तु पूंचा मात्र है। इसी तरह "कृष्ण मुख" का अर्थ जीभ दांत वाला अंदर का मुख नहीं है किन्तु गाल, आँख, नाक वाला वाहरी भाग है।

अभयनंदि के लघुस्नपन श्लोक १२ में लिखा है कि—देवों ने मेरु के मस्तक पर भगवान् का अभिषेक किया। इसकी संस्कृत टीका

गुणभद्र कृत—बृहत्स्नपन श्लोक ४० में—"क्षिपामि जिन पादयो रूपधरित्रि पुष्पांजलिम्" लिखा है इससे स्पष्ट सिद्ध है कि-पुष्पांजलि जिन चरणों के पास की भूमि में ही चढ़ाई जाती है जिन चरणों से स्पर्शित नहीं की जा सकती है। इसी तरह सोमसेन कृत त्रिवर्णाचार पृष्ठ १०२ में लिखा है कि—"जिनश्री पाद पीठस्थां शेषां शिरसि धारयेत्।" अर्थात् चरण चौकी पर स्थित शेषा-पुष्पमालादि को शिर पर धारण करना चाहिये।

गुणभद्राचार्य कृत उत्तर पुराण पर्व ७४ श्लोक ३२१-गंधादिभि विभूष्यैतत्पादोपात्त महीतलं ॥ इसमें स्पष्ट मुनि पुंगव महावीर के चरणों की पास की भूमि पर गंध पुष्पादि के चढ़ाने का उल्लेख किया है।

यशस्तिलक चम्पू में बताया है—"पुष्पं त्वदीय चरणार्चन पीठसंगात्" ॥५०७॥ अर्थात्–भगवान् की चरण चौकी पर पुष्प चढ़ाये जाते हैं भगवान् के चरणों पर नहीं। पुष्पों का संसर्ग चरण चौकी से ही है चरणों से नहीं। यहां मूल के "अर्चन–पीठ" (पूजा चौकी) शब्द से इस बात का भी खुलासा होता है कि पूजाद्रव्य चरणों के आगे चौकी पर चढ़ाये जाते हैं और उस चौकी को "अर्चन-पीठ" कहते हैं।

रावजी सखारामजी द्वारा प्रकाशित गजांकुश कृत अभिषेक पाठ के साथ गुरुपूजा छपी है इसमें पुष्पों को मुनि चरणों की पास की भूमि में चढ़ाना लिखा है। निम्नांकित ग्रंथों में भी प्रतिमा के आगे ही चढ़ाना लिखा है—बसवा गुटका (वि० स० १५६३) पत्र ४६ आदि–जिनाग्रे परिपुष्पांजलिंक्षिपेत्।

नित्य पूजापाठ—विधियज्ञ प्रतिज्ञानाय जिन प्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

तरह के कथन हैं जिनमें दृष्टिकोण के समझने की बड़ी जरूरत है। ठीक आशय के ग्रहण न करने से अनेक विसंवाद उठ खड़े होते हैं।

किसी सास ने बहू को कहा—ऊपर से कचरा डालो तो आदमी देख कर डालना। बहू ने जब नीचे से आदमी गुजरा तो उस पर कचरा डाल दिया। इससे जब झगड़ा हुआ तो सास ने बहू को कहा-मेरा आशय तो यह था कि—आदमी देखकर यानि आदमी बचाकर कचरा डालना तुमने आशय तो पकड़ा नहीं और गलत तरीके से शब्दों को पकड़ लिया। इसी से यह अनर्थ हुआ।

पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में लिखा है—

अत्यन्त निशितधारं दुरासदं जिनवरस्य नय चक्रं।
खण्डयति धार्यमाणं, मूर्धानं झटिति दुर्विदग्धानां॥

अर्थात्—जिनेन्द्र का नयचक्र अत्यन्त तेज धार वाला और दुःसाध्य है अगर उसे सावधानी से ग्रहण नहीं किया जाय तो वह ग्रहणकर्त्ता का ही शिर तत्काल उड़ा देता है।

निर्वाण क्षेत्र नंदीश्वर द्वीप रत्नत्रयादि की पूजा में भी गंध-पुष्पादि चढ़ाये जाते हैं तब उनका विलेपनादि किनके होगा? अतः प्रतिमा के आगे चौकी पर ही अष्ट द्रव्यों को चढ़ाना सुसंगत है।

राजवार्तिक अ० ६ सू० २२—"चैत्यप्रदेश गंध माल्य धूपादि मोषणं"—इसमें प्रतिमा के गंधादि का चोरना अशुभाश्रव का कारण बताया है। अगर गंध के लेपन की प्रवृत्ति मानी जाय तो इसका चुराना संभव नहीं अतः गंधादि का चढ़ाना ही इससे सिद्ध होता है।

राजवार्तिक अ० ७ सूत्र २९ में चन्दन को परिग्रह में बताया है तब उसे मूर्ति के लगाकर निर्ग्रन्थ दि० मूर्त्ति को सग्रंथ बनाना है।

होता रहता है। इससे एक बात और फलित होती है कि
प्रतिमाके गंधलेपन,चरणों पर पुष्प चढ़ाना ये बन ही नहीं

"सिद्धान्तसार प्रदीप" अध्याय ६—

यज्जैन चन्द्र बिम्बस्य चर्चितं कुंकुमादिभिः।
पाद पद्मद्वयं भव्यै स्तद् वंदयं नैव धार्मिकैः

"स्वबोध रत्नाकार"—

पाद द्वयं जिनेन्द्रस्य चन्दनैस्तु सुचर्चितं।
धार्मिकास्ते न पश्यंति, महापाप निबंधकम्॥

"सार चतुर्विंशति" (कुल भूषण स्वामी कृत)

अनर्चित पद द्वंद्वं कुंकुमादि विलेपनैः।
जिनेन्द्र बिम्बं पश्यंति, ते नराः धार्मिकाः भुवि॥६।

इन ग्रंथों में बताया है कि—जिस जिनबिम्ब के
कुंकुमादि से विलिप्त हों भव्य उनके दर्शन-वंदन नहीं
कुंकुमादि से अलिप्त के दर्शन करने वाले ही धार्मिक हैं।

[illegible] दीपिका (पं० दीपचन्दजी शाह कृत पृष्ठ ५३) [illegible]
[illegible] पृ० ६६ और १८८ तथा चर्चासार संग्रह में भी
[illegible] चन्दन लगाने और पुष्प चढ़ाने का प्रबल विरोध किया है।

[illegible] के सार, धार्मिक हृदय धरें।
वीतराग जिनबिम्ब, निरखि वंदन करें॥

तरह के कथन हैं जिनमें दृष्टिकोण के समझने की बड़ी जरूरत है। ठीक आशय के ग्रहण न करने से अनेक विसंवाद उठ खड़े होते हैं।

किसी सास ने बहू को कहा—ऊपर से कचरा डालो तो आदमी देख कर डालना। बहू ने जब नीचे से आदमी गुजरा तो उस पर कचरा डाल दिया। इससे जब झगड़ा हुआ तो सास ने बहू को कहा–मेरा आशय तो यह था कि—आदमी देखकर यानि आदमी बचाकर कचरा डालना तुमने आशय तो पकड़ा नहीं और गलत तरीके से शब्दों को पकड़ लिया। इसी से यह अनर्थ हुआ।

पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में लिखा है—

अत्यन्त निशितधारं दुरासदं जिनवरस्य नय चक्रं।
खण्डयति धार्यमाणं, मूर्धानं झटिति दुर्विदग्धानां॥

अर्थात्—जिनेन्द्र का नयचक्र अत्यन्त तेज धार वाला और दु:साध्य है अगर उसे सावधानी से ग्रहण नहीं किया जाय तो वह ग्रहणकर्त्ता का ही शिर तत्काल उड़ा देता है।

निर्वाण क्षेत्र नंदीश्वर द्वीप रत्नत्रयादि की पूजा में भी गंध-पुष्पादि चढ़ाये जाते हैं तब उनका विलेपनादि किनके होगा ? अत: प्रतिमा के आगे चौकी पर ही अष्ट द्रव्यों को चढ़ाना सुसंगत है।

राजवार्तिक अ० ६ सू० २२—"चैत्यप्रदेश गंध माल्य धूपादि मोपणं"—इसमें प्रतिमा के गंधादि का चोरना अशुभाश्रव का कारण बताया है। अगर गंध के लेपन की प्रवृत्ति मानी जाय तो इसका चुराना संभव नहीं अत: गंधादि का चढ़ाना ही इससे सिद्ध होता है।

राजवार्तिक अ० ७ सूत्र २९ में चन्दन को परिग्रह में बताया है तब उसे मूर्ति के लगाकर निर्ग्रन्थ दि० मूर्त्ति को सग्रंथ बनाना है।

तरह के कथन हैं जिनमें दृष्टिकोण के समझने की बड़ी जरूरत है। ठीक आशय के ग्रहण न करने से अनेक विसंवाद उठ खड़े होते हैं।

किसी सास ने बहू को कहा—ऊपर से कचरा डालो तो आदमी देख कर डालना। बहू ने जब नीचे से आदमी गुजरा तो उस पर कचरा डाल दिया। इससे जब झगड़ा हुआ तो सास ने बहू को कहा-मेरा आशय तो यह था कि—आदमी देखकर यानि आदमी बचाकर कचरा डालना तुमने आशय तो पकड़ा नहीं और गलत तरीके से शब्दों को पकड़ लिया। इसी से यह अनर्थ हुआ।

पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में लिखा है—

अत्यन्त निशितधारं दुरासदं जिनवरस्य नय चक्रं।
खण्डयति धार्यमाणं, मूर्धानं झटिति दुर्विदग्धानां॥

अर्थात्—जिनेन्द्र का नयचक्र अत्यन्त तेज धार वाला और दुःसाध्य है अगर उसे सावधानी से ग्रहण नहीं किया जाय तो वह ग्रहणकर्त्ता का ही शिर तत्काल उड़ा देता है।

निर्वाण क्षेत्र नंदीश्वर द्वीप रत्नत्रयादि की पूजा में भी गंध-पुष्पादि चढ़ाये जाते हैं तब उनका विलेपनादि किनके होगा ? अतः प्रतिमा के आगे चौकी पर ही अष्ट द्रव्यों को चढ़ाना सुसंगत है।

राजवार्तिक अ० ६ सू० २२—"चैत्यप्रदेश गंध माल्य धूपादि मोषणं"—इसमें प्रतिमा के गंधादि का चोरना अशुभाश्रव का कारण बताया है। अगर गंध के लेपन की प्रवृत्ति मानी जाय तो इसका चुराना संभव नहीं अतः गंधादि का चढ़ाना ही इससे सिद्ध होता है।

राजवार्तिक अ० ७ सूत्र २९ में चन्दन को परिग्रह में बताया है तब उसे मूर्ति के लगाकर निर्ग्रन्थ दि० मूर्त्ति को सग्रंथ बनाना है।

आहार के भेदों में लेप्याहार भी शास्त्रों में बताया है। अरहंत भगवान् के आहार ही नहीं होता तो फिर उनके शरीर लेप लगाना दिगम्बर आम्नाय सम्मत नहीं है. यह तो श्वे० आ है। भगवान् के किसी भी वस्तु का स्पर्श नहीं होना चाहिये पूजाद्रव्य उनके अंग पर नहीं चढ़ाना चाहिये सामने चढ़ाना चा

चर्चन का अर्थ पूजन लेना चाहिए विलेपन नहीं क्योंकि मे चर्चन का अर्थ पूजन भी दिया है। विलेपन से तो अंग पर नहीं करना चाहिए अग्रभूमि पर लेपन करना चाहिए।

शंका—फिर मूर्ति पर जलाभिषेक क्यों किया जाना

सामाधान—शुद्ध जल से नित्य प्रक्षाल करने में न बिगड़ कर उल्टी उज्ज्वलता आती है मूर्ति की स्वच्छ यह जरूरी है। दर्शक को इससे सम्यक् दर्शन होता है गंधलेपनादि से वीतराग मुद्रा में बिगाड़ आता है सरागता द्योतित होती है। इसमें दोष ही दोष है कोई लाभ नहीं में जल प्रतिमा पर गिराया जाता है लगाया या ठहराया वह लगता और ठहरता भी नहीं। जो आर्द्रता होती है व के संयोग से शीघ्र विलीन हो जाती है। जबकि गंधलेप के लगाये जाते हैं वे स्थायित्व को प्राप्त होते हैं औ वीतराग स्वरूप को विकृत करते हैं। ये अचल हैं जबकि जल चल है अतः दोनों की समता करना अज्ञता है। दो पाताल का अंतर है। अभिषेक शास्त्र विहित है गंध विरुद्ध हैं। जलाभिषेक प्राकृतिक है निर्जन वनों गि प्रतिमाओं का वर्षाजल से सदा अभिषेक होता रहता

तिलोयपण्णत्ती आदि में बताया है कि—ग ऋषभ प्रतिमा है कुण्ड के बहते जल से सदा प्रति